कबीर सार शब्द व्याख्या

कबीर के सार गर्भित शब्दों की निज अनुभव
के आधार पर महत्व पूर्ण स्पष्ट व्याख्या
(ले०—परमसंत दयाल फकीरचन्द जी महाराज)

—:०:—

सम्पादक—
नन्दू भाई
निजामाबाद (दक्षिण)

—:०:—

अ० स० सम्पादक—
देवीचरन मीतल
लेखराजनगर, अलीगढ़

—*—

प्रकाशक—
नन्दू भाई प्रधान
शब साहित्य प्रकाशन मंडल,
पो० दयाल नगर, अलीगढ़ ।

सं० शाका १८८७ | सर्वाधिकार सुरक्षित | मूल्य ३) रु०

मुद्रक—रामस्वरूप 'राघव' राघव प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़ ।

विषय सूची

(कबीर सार शब्द व्याख्या)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मैः श्री गुरुवे नमः॥

चेतावनी

ऐ मानव ! तू अपने को देह समझता है और ऐसा समझ कर इसमें फंसा हुआ है। तू देह नहीं है।

ऐ मानव ! तू अपने को मन समझता है और मन के संकल्प विकल्पों में फंस कर उलझता रहता है। तू मन भी नहीं है !

ऐ मानव ! तू अपने को रूह (आत्मा) समझता है। त आत्मा भी नहीं है। यह तो कारण शरीर है। बीज रूप है इस से तेरे देह मन ऐसे विकसित हुये हैं जैसे बीज से वृक्ष।

तू इन से परे परमतत्व का अंश है। वह तेरे अन्दर है। उसे पहिचान और इंसानियत के मार्ग पर चल कर अपना जीवन सुख शान्ति से व्यतीत कर।

भूमिका

(लेखक द्वारा)

शान्ति प्राप्त करने या उस परमतत्व की प्राप्ति के लिये मुझे संत मत की शिक्षा मिली थी। दाता दयाल ने सन् १९०५ ई० में कबीर साखियाँ पढ़ने को दी थीं। यहाँ मानवता मंदिर में सत्संग के समय उनका पाठ होता रहता है। मैंने जो कुछ समझा तथा अनुभव किया वह लिखा है। यह मानी हुई बात है कि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर अपने विचारों को व्यक्त करने की भावना पैदा होती है। वह उसको व्यक्त करने को विवश है। यों देखो कि कोई नई बात या खबर तुम सुनो तो जब तक तुम उसको किसीको बता न दोगे चैन नहीं आयेगा। जब बता दोगे शान्ति आजायगी। यही दशा मेरी है। चूंकि मुझे एक नई चीज मिली है जो मैंने कहीं सुनी नहीं. जो सुनी होगी तो समझी नहीं होगी, इसलिये विवश काम करता हूँ।

वह नई चीज क्या है? इसकी समझ मुझे अपने साधन से आई और संत कबीर के शब्दों से उसकी पुष्टि हो गई। वह नई चीज यह है कि वह मालिक जो समस्त धर्मों का उपास्यदेव है वह वह नहीं है जो यह समस्त धर्म वाले समझते हैं। वह वह अवस्था है जहाँ मानव जीवन अपने समस्त भान-बोध को खो जाता है। शेष जो कुछ रह जाता है वह वह है। इस लिये मेरी समझ में कलियुग में इन संतों की अभिव्यक्ति (ज़हूर) इसलिये हुई कि यह मानव जाति, जो उसके नाम पर उसको भिन्न भिन्न समझकर आपस में धार्मिक रूप से बट चुकी है, यह भिन्नता दूर हो जाय। रह गया सवाल उस मंजिल तक आने का यह टेढ़ी खीर है। मैं चलता आ रहा हूं। अब भी

गिरता रहता हूँ। मैं ही नहीं गिरा, संत कबीर भी गिरते रहे। एक शब्द में वह लिखते हैं 'पिया का मारग कठिन है चढ़ चढ़ गिर गिर पड़ूँ।' अफसोस! वह शब्द पूरा याद [नहीं आता फिर भी इस शिक्षा से इतना तो लाभ हो सकता है कि हम लोगों का पक्षपात द्वेष दूर हो और हम अपनी कमजोरियों को महसूस करते हुये संभल कर जीवन गुजारें और हम सब का आदर्श एक हो।

गुरुमत, जो कबीर का भी मत है, इसकी गलत समझ ने विभिन्न पंथ और गद्दियाँ बनादी। सर्व साधारण असली भाव को न समझ कर केवल डेरे, धाम, गद्दियों और उनके गुरुओं से बंध कर पक्षपात और हठधर्मी के अनुयायी हो रहे हैं। मैं अपने जीवन के अनुभव के आधार पर निर्भय होकर कहना चाहता हूं कि कोई मानव देह जो उत्पन्न होकर मरता है सत्गुरु नहीं है। सत्गुरु केवल ज्ञान, अनुभव, विश्वास और शब्द है। यह कुछ तो अपनी निजी सच्ची कुरेद और खोज से मनुष्य के अंदर उत्पन्न होता है और कुछ बाहरी किसी सार भेद ज्ञाता पुरुष, जो स्वयं सुलझा हुआ है, उसके उपदेश, उसकी दया और उसके हित से मनुष्य के अंतर प्रगट होता है। संत कबीर ने अपने इस शब्द में स्पष्ट रूप से ऐसा कह दिया है जो मैंने कहा है। मुझे तो यह अनुभव आचार्य पदवी की हैसियत में हुआ जिसका समर्थन कबीर के इस शब्द ने कर दिया—'सत गुरु चीन्हों रे भाई।'

सत्तनाम बिन सब नर बूड़े, नरक पड़ी चतुराई।
वेद पुरान-भागवत गीता, इनको सबै दृढ़ावै।
जाको जनम सुफल रे प्रानी, सो पूरा गुरु पावै॥२॥

वहुत गुरू संसार कहावें, मंत्र देत हैं काना।
उपजैं बिनसैं या भौ सागर,, मरम न काहू जाना ॥३॥
सतगुरु एक जगत में गुरू हैं, सो भव से कढ़िहारा।
कहै कबीर जगत के गुरु आ, मरि मरि लें औतारा ॥४।

इसके उपरान्त गुरु मत से सच्चा ज्ञान और शुद्ध बुद्धी मिलता है। उस ज्ञान के आधार पर फिर मनुष्य अपने आपको उस मालिक के, जो उस त्रिलोकी से परे है, मिलाप (साक्षात्कार) की आशा कर सकता है। कबीर का कथन है—

चल सत्गुरु की हाट, ज्ञान बुद्धि लाइये।
कीजे साहब सों हेत, परम पद पाइये॥
कहैं कबीर समझाय, समझ हिरदे धरो।
जुगन जुगन करो राज, आस दुरमति परि हरो॥

मैंने इसलिये अपने कर्म भोग वश या मौज आधीन इस समझ और बुद्धि को देने के लिये जो अपने जीवन की खोज में प्राप्त की है उसे शब्दों में वर्णन किया। वर्णन तो मैंने अपने भाव की पूर्ति के लिये किया है मगर सम्भव हो सकता है इससे किसी को लाभ पहुंचे।

दयाल फ़कीर।

R.S.

कबीर सार शब्द व्याख्या

माया का अंग

आज सत कबीर की साखी से 'माया का अंग' की साखी का पाठ हुआ। पूरी साखी सुनी। मैं चाहता हूँ कि मेरा लेख पढ़ने से पहिले पाठक इस साखी* को पूरी पढ़लें। लोग मुझे सन्त समझते हैं। दाता दयाल (महर्षि शिव) ने मुझे 'भव-निधि तारन' की पदवी दी। मेरी तारीफ के पुल बाँध दिये। मेरा अपना जीवन सचाई पसन्द है। अपनी रहनी को देखता रहता हूँ। ख्याल आया कि क्या तूने भी इस माया को ठग लिया ? क्या तुम इससे बरी हो गये ? यदि हो गये हो तो तुम दुनियाँ का क्या भला कर सकते हो। अब यह सवाल है कि मेरा अपना क्या भला हुआ। आँखें बन्द हो गईं। माया का रूप जो मेरी समझ में आया है वह यह है कि जो वस्तु या जो विचार मेरी सुरत को अपनी ओर खेंच कर अपने प्रभाव को मुझमें बिठा देते हैं वह माया है। हम दुनियाँ में रहते हैं, इसके प्रभाव प्रभावित करते हैं, अपने अन्तर अनेक प्रकार के भाव विचार, रूप रंग रेखायें देखते हैं और इनमें दिलचस्पी लेते हैं या निराश होते हैं, यह सब माया है। बाहर की

---

*सत कबीर की साखी' पुस्तक 'शिव' कार्यालय में मिलती है।

दुनियां के संस्कार स्थूल माया हैं। अन्तरी खेल झीनी माया कहलाती है। इतनी आयु के बाद महसूस करता हूँ कि मेरे जीवन का सारा खेल माया ही निकला। दुनियाँ से वैराग हुआ। अपनी अंतरीय सूक्ष्म रचना, योग की श्रेणियां, प्रेम भक्ति की भावनायें, ऋद्धि सिद्धि के चमत्कार क्या सिद्ध हुये? माया। दाता दयाल (महर्षि शिव) का अत्यन्त धन्यवाद है कि उस शुद्ध स्वरूप ने दया कर के आचार्य पदवी दी और उस झीनी माया का रूप दिखला दिया। चूँकि मैं किसी के अंदर नहीं जाता और दूसरे के अंदर उसकी अपनी कल्पना से या रेडियेशन से मेरा रूप काम करता है तो मुझे विश्वास हो गया कि समस्त योगी, भक्त, ज्ञानी ध्यानी ऋद्धि सिद्धि वाले सब के सब इस माया के चक्र में हैं और मैं भी इस चक्र में रहा हूँ।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया, और तुरियातीत अवस्थायें सब की सब माया ही हैं। सोचता हूं कि ऐ फकीर क्या तू निकल गया? 'हाँ' और 'नहीं।' 'हाँ' इसलिये कि मुझे इसका अर्थात् माया का रूप पता लग गया। जब तक देह और मन तथा वाह्य लोक का जीवन है तब तक इस माया का खेल होगा, होता रहेगा। कोई रोक नहीं सकता। केवल इस ज्ञान से कि मेरा निज स्वरूप अलग है और उसके सहारे यह खेल होता रहता है, मैं इस माया में रहता हुआ माया के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता और कोशिश करता रहता हूं कि अपनी सुरत को वहाँ ठहराये रक्खूँ या उस नुक्ते का सहारा लेता रहूँ जो मायातीत है। कभी कभी जब अकेला होता हूँ तो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान-बोध को भूल कर उस शब्द के भंडार में ठहरता रहता हूं। यह मेरा निज

अनुभव है उसके सिवाय और मेरी समझ में कुछ नहीं आया। फिर सोचता हूं कि क्या मैं किसी का भला कर सकता हूँ ? हाँ, कर सकता हूँ मगर केवल इतना ही कि अपनी शुभ भावनायें देता रहता हूँ जोकि एक प्रकार की माया ही है और दूसरे के भाव और विचार को बदल कर सुखदाई, आशावादी बनाने की कोशिश करता रहता हूँ। इसके साथ ही जो अधिकारी हैं उनको सत्संग में इस माया का रूप बताने की कोशिश करता हूँ और उनकी तवज्जह को उनके अपने स्वरूप की ओर जाने का संकेत करता रहता हूं।

मैं स्पष्टता से इस लिये काम लेता हूं कि मेरी आत्मा पर किसी प्रकार का बोझ न रहे। सम्भव है यह दूसरे सन्त महात्मा कुछ कर सकते हों। उनमें शक्ति हो। यदि है भी तो यह विचार की शक्ति का परिणाम है और वह भी माया के अंदर ही है और वे इस काल और माया के चक्र से नहीं निकले।



(२) माया का अंग (क्रमशः)

ख्याल आता है कि लोग तुझे परमसंत कहते हैं, पाँव चूमते हैं, तथा फूल चढ़ाते हैं क्या तू माया से बच गया है। माया मैंने क्या समझी है। मेरे मन के अंदर से जितने विचार अच्छे या बुरे जो निकलते हैं यह माया है। इससे मेरा बचाव हो गया। मुझे समझ आ गई कि जो कुछ भी सोचता हूँ, लिखता हूं, बात करता हूँ यह सब माया है। सुमिरन ध्यान भजन भी माया है।

माया तो ठगिनी भई, ठगत फिरे सब देस।
जा ठग ने ठगिनी ठगी, ता ठग को आदेश॥

सब प्रकार के विचार सांसारिक या परमार्थ के सब माया ही हैं। यह हमारी सुरत को अपनी ओर खींचते रहते हैं। दुनियाँ के व्यौहार मान प्रतिष्ठा आदि आदि व अंतरी दृश्य अपनी ओर खींचते हैं। गुरू के दर्शन या राम का प्रगट होना भी सुरत को अपनी ओर खींचता है। यह भी ठगिनी का काम है। जो इस ओर न खिंचा उसने इस ठगिनी को ठगा। मैं मोटी माया छोड़ गया मगर झीनी माया से न निकल सका था। वह गुरु ज्ञान से मेरी समझ में आ गई। अब साधन में मेरी सुरत सीधी शब्द में चली जाती है। जहाँ मै रहता हूं अब वहाँ सीधा शब्द में चला जाता हूं मगर यह अवस्था तमाम दुनियां की वस्तु नहीं है (अर्थात् सब के हिस्से में नहीं आती) पहिले मनुष्य मोटी माया में फंसे। जब इसका अनुभव हो जाय तब इसे छोड़ दे। फिर झीनी माया में फंसे, फिर छोड़ दे। जब तक मनुष्य फंसता नहीं और इसका अनुभव नहीं कर लेता यह माया छूटती नहीं है।

माया छाया एकसी, बिरला जाने कोय।
भगता के पीछे लगे, सम्मुख भागे सोय॥

इस माया का रूप बहुत देर के बाद पहिचाना जाता है। चूँकि मैं समझ गया कि यह दृश्य जो प्रगट होते हैं और विचार जो उठते हैं कल्पित हैं मैं अब इनमें फंसता नहीं मगर इस अवस्था में रहने से दुनियाँ नहीं रहती अर्थात् दुनियाँ की ओर से आकर्षण नहीं रहता। दुनियां का जीवन फीका पड़ जाता है मगर इस दशा में आनन्द नहीं। अब साँसारिक काम बंधा हुआ करता हूं। पिछले कर्म हैं इनके कारण विवश होकर

कर्म करता हूं।

कबीर माया पापिनी, मागे मिले न हाथ।
मनहुं उतारी झूठकर, लागी डोले साथ॥

जो विचार उठते हैं वह तो उठते ही रहेंगे। यह लाजिमी हैं। जीवन जब तक है संकल्प विकल्प साथ रहेंगे। माया साथ रहेगी। चूँकि ज्ञान है इसलिये उसका प्रभाव ग्रहण न करेगा।

मोटी माया सब तजैं, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय॥

एक को गुरु बनने का ख्याल, भक्त को भक्ति का ख्याल, किसी को आनन्द की इच्छा, यह सब झीनी माया है। स्त्री को छोड़ना, धन सम्पत्ति छोड़ना यह मोटी माया है मगर—

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई विलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गये हिराय॥

जिसे अंतर का ज्ञान हो गया और झीनी माया छोड़ दी तो मोटी माया तो स्वयं ही जाती रही और दुख दूर हुये। जब इसान अपने संकल्प में ही न फंसा तो दुख दूर हो गये। चूँकि इन संकल्पों को मायावी समझेंगे। फिर वह अपने आत्म स्वरूप में शब्द व प्रकाश में रहेंगे। यही बात शास्त्र कहते हैं मगर बिना अन्तिम अनुभव के यह माया छूटेगी नहीं।

सारी उम्र दाता दयाल मुझे इस माया से निकालते रहे। मैं न निकला। अब समझा हूँ। हर मनुष्य के भाग में यह वस्तु नहीं आती। आने का समय है। मैं अपने आप न निकल सका। जिनके भाग्य में हो उसे यह वस्तु मिलती है।

कबीर माया जात है, सुनो शब्द निज मोर।
सखियों के घर साध जन, सूमों के घर चोर॥

कबीर माया सूम की, देखन का ही लाड़।
जो वा में कौड़ी घटे, साईं तोड़ै हाड़॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भये, संचित नर्क दुआर॥

इस कड़ी का सूक्ष्म अंग—धन को खर्च करने से फ़ायदा रहेगा। इसी तरह जो अपने अन्तर में सुमिरन ध्यान और भजन करके ऋद्धि सिद्धि शक्ति प्राप्त कर तजुर्बा करके अगर उनको छोड़ देंगे तो वह उनको खा जायेंगे और बन्धन में न फसेंगे। मुक्त हो जायेंगे। भजन में ऋद्धि सिद्धि वगैरह में फँसने वाले आवागमन से छूट न सकेंगे। वह बाहरी दौलत है यह अन्तरी दौलत है।

किस चीज को जमा करना कहा जाता है—

खान खर्च बहु अन्तरा, मन में देख विचार।
एक खवावे साध को, एक मिलावे छार॥

खर्च करने का तरीका यह है कि अनधिकारियों को बताओगे तो धन व्यर्थ नष्ट होगा। प्रेम, भक्ति और खुशी की बात अनाधिकारी को बताने से हानि इसी तरह है जिस तरह बुरों को दान देना और धन नष्ट करना।

आँधी आई प्रेम की, ढई भरम की भीत।
माया टाटी उड़ गई, लगी नाम सों प्रीत॥

जब ज्ञान हो जाय कि माया क्या है तो सुरत कहाँ जायेगी? नाम में अथवा अपनी ज़ात में जायेगी। इससे पहिले माया के चक्र में रहती थी। माया के विचार और धन आदि यह सब वस्तुयें नाशवान हैं।

(३) कबीर की वाणी और मेरा अनुभव

कबीर ने अनेक प्रकार के भावों पर अपनी वाणी द्वारा प्रकाश डाला है– जैसे दीनता, वैराग, शील, संतोष, क्षमा आदि आदि। जीवन इसी धुन में बीता। कई बार इन नियमों पर चलने का प्रयत्न किया और चला मगर गिरता रहा। यह मेरे साथ ही नहीं हर एक परमार्थी जीव के साथ भी होता है। हर एक मनुष्य इन शुभ गुणों को ग्रहण करना चाहता है मगर उसका अनुभव बतायेगा कि उसमें गिरावटें आती रहती हैं। मुझे आईं। मैं अपनी कमजोरियों को हमेशा सत्संगों में कहता हुआ आ रहा हूँ। काम का अंग, क्रोध का अंग, लोभ का अंग, मोह का अंग आदि को छोड़ने की कोशिश करता रहा। बहुत कुछ छोड़ा मगर गिरावटें आती रहती। इस बुढ़ाप में आकर शान्ति मिली। इन से छुटकारा मिला।

विकारों से छुटकारा

वह छुटकारा किसने दिलाया? केवल इस अनुभव ने कि मैं कौन हूँ। जब तक यह समझता था कि मैं कुछ हूं चाहे बाप बना, बेटा बना, चेला बना, गुरु बना या कुछ और बना तब तक समय समय पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मेरे चिदाकाश पर उठते रहे। यह मेरे जीवन का अनुभव है। जब से यह समझ में आ गया कि वह मालिक परमतत्व एक शक्ति है और यह 'मैं' उसकी हिलोर से बनती है और उसी में समा जाती है तब से इस अनुभव के पूर्ण विश्वास ने इन सब अंगों से छुटकारा दिलाया। यही बात सत कबीर ने कही है:—

(४) क्षमा का अंग

शील क्षमा जब ऊपजे, अलख दृष्टि जब होय।
बिना शील पहुंचे नहीं, लाख कथे जो कोय॥

इसलिये मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। जो मेरा अनुभव निकला वही कबीर का निकला। इसलिये कर्म भोग वश कहता हूं कि ऐ जिज्ञासुओ! शान्ति के इच्छुको! परमार्थ के चाहने वालो! जब तक किसीको अपने रूप का कि मैं कौन हूँ, पूरा ज्ञान नहीं होता, समझ नहीं आती उसमें गिरावटें आती रहेंगी और उसकी शक्ति को भंग करती रहेंगी। इसका इलाज केवल किसी विदेह पुरुष या वीतराग पुरुष का सत्संग है। उसकी बात को परमार्थ की चाह रखते हुये समझना है। यही गुरु मत है। सुमिरन, ध्यान, भजन आदि मन की चंचलताई को दूर करने के लिये हैं। यह इष्ट पद नहीं हैं। यह मैं क्यों कह रहा हूं? इसलिये कि अब मैं निज अनुभव के आधार पर ऐसा कहने को विवश होगया औ सुमिरन ध्यान और भजन तीनों छूट गये। जब अकेला बैठता हूं तो इस अनुभव के आधार पर जो मुझको हुआ मेरी सुरत तुरन्त विस्माधि, उन्मुनि या अलख अवस्था में चली जाती है जहाँ सिवाय एक विशेष प्रकार के ठहराव के और कुछ नहीं है उस ठहराव में स्वाभाविक शब्द होता रहता है। वह निज नाम है वही सार शब्द है। क्या पता इसी अवस्था को विदेह गति कहते हों शरीर के स्थायी त्याग (मृत्यु) के बाद क्या होगा। मालुम नहीं यद्यपि अनुभव और अनुमान है। चूँकि मेरा यह कर्म था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा इसलिये कहता रहता हूं यद्यपि अब इस कर्म से भी उपरामता आगई है।

सहजे ही धुनि होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं॥

नोट- जो इस लाइन पर चलने वाले हैं वह इस अन्तिम अवस्था का जिक्र सुन कर घबरायेंगे कि उनको कब यह अवस्था प्राप्त होगी। कबीर की वाणी से उत्तर देता हूं—

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे केवड़ा, ऋतु आये फल सोय॥

मुझे देखो कहाँ १९०५ ई० और कहाँ १९६५ ई०! साठ वर्ष लगे। इस अवस्था तक असली सूरत में आने के लिये चले चलो। वीर बनो। इष्ट पद पर अवश्य पहुँचोगे, क्योंकि यह हमारा आदि है। जीवन संग्राम है। चलते रहो। उस अकाल पुरुष, मालिके कुल, परमतत्व का विश्वास रहे।

कबीर रन में आयके, पीछे रहे न सूर।
साईं के सन्मुख रहे, जूझै सदा हुजूर॥
गगन दमामा बाजिया, पड़ी निशाने चोट।
कायर भागे कुछ नहीं, सूरा भागे खोट॥

असल सतगुरु तुम्हारे अन्तर शब्द हैं। उसका सहारा लिये हुये अकाल पुरुष का विश्वास रखते हुये चले चलो।

---

(४) अति सूक्ष्म विचार

आज कल सत कबीर की साखी का पाठ प्रतिदिन मानवता मंदिर' में होता है। आज जिस साखी का पाठ हुआ वह यह है:—

सूक्ष्म मार्ग को अंग

इत ते कोइ न आइया, जासे पूछूँ जाय।
इत ते सब कोइ जात है, भार लदाय लदाय ॥ १ ॥
उतते सतगुरु आइया, जाकी मति बुधि धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावें तीर ॥ २ ॥
अब हम चले अमरपुरी, टारे टूटे टाट।
आवन होय सो आइये, सूली ऊपर बाट ॥ ३ ॥
सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ताको काल कहा[1] करै, आठ पहर होशियार ॥ ४ ॥
यार बुलावे भाव से, मो पै[2] गया न जाय।
घन[3] मैली पिउ ऊजला, लाग न सक्के पाय[4] ॥ ५ ॥
जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तो सम्मुख खड़ा, लाग कबीरा पाय ॥ ६ ॥
जो आवे तो जाय नहिं, जाय तो कहाँ समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥ ७ ॥
कौन देश ते आइया, जाने कोई नाहिं।
वह मारग पावे नहीं, भूल पड़ी जग माहिं ॥ ८ ॥
नाम न जाने गाँव का, बिन जाने कहाँ जाँव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस है गाँव ॥ ९ ॥
सतगुरु दीन दयाल है, दया करी मोहि आय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥ १० ॥
सब से मैं पूछत फिरूँ, रहन कहे नहिं कोय।
प्रीत न जोड़े राम से, रहन कहाँ से होय ॥ ११ ॥
चलन चलन सब कोई कहै, मोहिं अन्देशा और।
साहिब सों परिचय नहीं, पहुँचोगे किस ठौर ? ॥ १२ ॥

१ क्या। २ मुझ से। ३ स्त्री।

जाने की तो गम नहीं, रहने की नहि ठौर।
कहैं कबीर सुन साधवा, अवगत की गत और ॥१३॥
कबिरा मारग कठिन है, कोई न सक्का जाय।
गये सो बहुरे[1] भी नहीं, कुशल कहै को आय ॥१४॥
कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सिलहली[2] गैल।
पाँव न टिके पिपीलका[3], पडित लादे बैल ॥१५॥
जहाँ न चिउंटी चढ़ सके, राई ना ठहराय।
मनुआँ तहाँ ले राखिये, सोई पहुँचा जाय। १६॥
कबीर मारग कठिन है, ऋषि मुनि बैठे थाक।
तहाँ कबीरा चढ़ गया, गहि सत्गुरु की साक[4] ॥१७॥
सुर नर थाके मुनि जना, तहाँ न कोई जाय।
मोटा भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥१८॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिष्णु महेश।
तहाँ कबीरा चढ़ गया, सत्गुरु के उपदेश ॥१६।
अगमहु ते जो अगम है, अपरम पार अपार।
तहाँ मन धीरज क्यों धरै, पन्थ खरा निर्धार ॥२०॥
जेहि पैंड़े पंडित गये, ते ही गये बहीर[5]।
अवघट घाटी राम की, तहाँ चढ़ रहे कबीर ॥२१॥
घाटहि पानी सब भरैं, अवघट भरै न कोय।
अवघट घाट कबीर की, भरै सो निर्मल होय ॥२२॥
चलते चलते पग थके, निपट करारे कोस।
बिन दयालु झलका पड़े, काको दीजे दोष ॥२३॥
बाट बेचारा क्या करे, पन्थि[6] न चलै सुधार।
सीधा मारग छोड़ कर, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२४॥
प्र०=कौन देश से आइया ? कौन तुम्हारा ठाम ?

---

१ लौटे २ चिकनी ३ चिउंटी ४ सहारा ५ बहुतेरे ६ मुसाफिर।

जाने की तो गम नहीं, रहने की नहि ठौर।
कहैं कबीर सुन साधवा, अवगत की गत और ॥१३॥
कबिरा मारग कठिन है, कोई न सक्का जाय।
गये सो बहुरे[1] भी नहीं, कुशल कहै को आय ॥१४॥
कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सिलहली[2] गैल।
पाँव न टिके पिपीलका[3], पंडित लादे बैल ॥१५॥
जहाँ न चिउंटी चढ़ सके, राई ना ठहराय।
मनुआँ तहाँ ले राखिये, सोई पहुँचा जाय।१६॥
कबीर मारग कठिन है, ऋषि मुनि बैठे थाक।
तहाँ कबीरा चढ़ गया, गहि सत्गुरु की साक[4] ॥१७॥
सुर नर थाके मुनि जना, तहाँ न कोई जाय।
मोटा भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥१८॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिष्णु महेश।
तहाँ कबीरा चढ़ गया, सत्गुरु के उपदेश ॥१९।
अगमहु ते जो अगम है, अपरम पार अपार।
तहाँ मन धीरज क्यों धरै, पन्थ खरा निर्धार ॥२०॥
जेहि पैंड़े पंडित गये, ते ही गये बहीर[5]।
अवघट घाटी राम की, तहाँ चढ़ रहे कबीर ॥२१॥
घाटहि पानी सब भरैं, अवघट भरै न कोय।
अवघट घाट कबीर की, भरै सो निर्मल होय ॥२२॥
चलते चलते पग थके, निपट करारे कोस।
बिन दयालु झलका पड़े, काको दीजे दोष ॥२३॥
बाट बेचारा क्या करे, पन्थि[6] न चलै सुधार।
सीधा मारग छोड़ कर, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२४॥
प्र०=कौन देश से आइया ? कौन तुम्हारा ठाम ?

१ लौटे २ चिकनी ३ चिउंटी ४ सहारा ५ बहुतेरे ६ मुसाफिर।

कौन तुम्हारी जाति है ? कौन पुरुष का नाम ? ॥२५॥
उ०— अमर लोक से आइया, सुख सागर के ठाम।
जाति अजाती है मेरी, सत्त पुरुष का नाम ॥२६॥
प्र०—कौन तुम्हारी जात हैं ? कौन तुम्हारा नाँव ?।
कौन तुम्हारा इष्ट है ? कौन तुम्हारा गाँव ? ॥२७॥
उ०— जात हमारी आत्मा, प्रान हमारा नाम।
अलख हमारा इष्ट है. गगन हमारा ग्राम ॥२८॥
प्र०—कहाँ से आया जीव यह ? किसमें जाय समाय ?।
कौन डोर से चढ़ चला ? कहो मुझे समझाय ॥२९॥
उ०—सगुन से आया जीव यह; निर्गुन जाय समाय।
सुरत डोर ले चढ़ चला, सतगुरु दिया बताय ॥३०॥
ना वहाँ आवागमन है, नहिं धरती आकास।
तहाँ कबीरा सन्त जन, साहिब पास खवास ॥३१॥
साहिब की गति अगम है, चल अपने अनुमान[1]।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचेगा परमान[2] ॥३२॥
गागर ऊपर गागरी, चूले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरी[3], तहाँ बुलावे यार ॥३३॥
प्र०—कौन सुरत ले आवई ? कौन सुरत ले जाय ?।
कौन सुरत है अस्थिरी ? सो गुरु देव बताय ॥३४॥
उ०—बास सुरत ले आवई, शब्द सुरत ले जाय।
परिचय सुरत है अस्थिरी, सो गुरु दिया बताय ॥३५॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहैं कबीर सँदेस ॥३६॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे, अब कुछ कहा न जाय।

१ विचार। २ अवश्य ही। ३ सेज,

सिन्ध समाना बुन्द में, दरिया लहर समाय ॥३७॥
प्रान पिण्ड को तज चला, छूट गया जंजार[७]।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ वार ॥३८॥

अपना जीवन सामने है। धर्म और पंथों की वाणियाँ पढ़ीं हैं। मनुष्य बुद्धि रखता हुआ सोचता है कि मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ पहुँचूंगा। लोग जन्मते हैं और मरते हैं। अपनी अपनी बोलियाँ बोलते हैं। मैंने भी इस धुन में जीवन खोया और कबीर ने भी खोया। कबीर अपना अनुभव कहते हैं:—

उतते कोई न आइया, जासे पूछूँ जाय।
इतते सब कोई जाइया, भार लदाय लदाय ॥

क्या यह गलत है? नहीं, ग्रन्थ कारों ने आवागवन के मसले को सिद्ध करने के लिये अपने भाव विचार अथवा अनुभवों को ग्रन्थों में भर दिया। मैं चाहता हूँ कि मौज मुझको तौफीक दे कि मैं मरने के बाद का अपना परिणाम बता सकूँ। इस समय तक जो कुछ समझा है, सम्भव है वह गलत हो मगर कबीर की वाणी से मेरे अनुभव का समर्थन होता है इसलिये सहमत हूँ और इसीलिये हौसला किया है। वह क्या कहते हैं: —

उतते संतगुरु आइया, जाकी बुधि मति धीर।
भवसागर के जीव को, खेय लगावे तीर ॥

मनुष्य का मन हर समय चंचल रहता है थिर नहीं होता। इसकी चंचलताई और अस्थिरताई या हर समय कुछ न कुछ सोच विचार भवसागर है। दाता दयाल ने दया की कि मुझे आचार्य पदवी देकर मन के थिर करने के लिये मुझको विवश

७ जंजाल।

कर दिया। मैं किसी के अंदर प्रगट नहीं होता किन्तु लोग अपने मन से, विश्वास से अथवा श्रद्धा से मेरा रूप बनाते हैं। इस ज्ञान से मैं विवश होकर अपने मन के जितने रूप रंग रेखायें और भाव विचार जो पैदा होते रहते हैं इनको छोड़ने की कोशिश करता रहता हूँ। साथ ही मेरी शारीरिक और मानसिक प्रकृति और उस पर जो बाहरी प्रभाव पड़ते हैं उन के कारण जो भाव विचार पैदा होते रहते हैं, उनको छोड़ने की कोशिश करता रहता हूँ। इस मन के परे हो जाना ही भवसागर से पार होना है।

यद्यपि पूर्ण रूप से हर समय नहीं छोड़ सकता मगर जब कभी वह छूट जाते हैं तो शेष जो रह जाता है वह मेरी ज़ात है निज स्वरूप है। वह मेरा आदि है। मैं उसे अमर पद कहता हूँ। यह जितने दृश्य, भाव विचार पैदा होते हैं यह सिफात (गुण) हैं। इसीको काल और माया कहते हैं। इसलिये मैं सत कबीर के साथ सहमत हूं। वह कहते हैं:—

अब हम चले अमरपुरी, टारे टूरे टाट।
आवत होय सो आइये, सूली ऊपर बाट॥

'वह टारे टूरे टाट क्या हैं? यह जितने खेल टूटने वाले हैं जबतक मनुष्य इनको नहीं छोड़ता तबतक वह जहाँ से आया है वहाँ नहीं जा सकता। अब मैं सोचता हूं कि इंसान कहां से आता है। उत्तर मिलता है कि कहीं से नहीं आता। चूंकि मनुष्य की ज़ात (निजस्वरूप) की तवज्जह इन सिफ़ात (गुणों) की ओर रहती है या माया की ओर रहती है वह भ्रम में आकर इन वस्तुओं को सत्य मानकर समझता है कि मैं फँसा हुआ हूं। सतगुरु जिसकी बुद्धि मति धीर है वही इस भवसागर के जीव को ऐसी युक्ति बता कर, जिससे वह अपनी

बुद्धि और मति को थिर करले, उसको अपने निज स्वरूप का ज्ञान दे देता है, जिस तरह दाता दयाल ने मेरे साथ खेल खेल कर मेरी बुद्धि और मति को थिर कर दिया मगर बुद्धि और मति को थिर करना अति ही कठिन है। कबीर आगे कहते हैं :—

सूली ऊपर घर करे, विष का करै अहार।
ताको काल कहा करे, आठ पहर होशियार॥

यह सूली पर चढ़ना है। जो व्यक्ति इस राज (भेद) को समझ कर हर समय चौकन्ना रहता है और अपने आप को इन गुणों में फँसने नहीं देता और अपने आप को अपने स्वरूप से लगाये रखने की कोशिश करता है वही इस आवागमन के खेल से बच सकता है दूसरा नहीं। इसलिये अभ्यास के साथ सत्संग की आवश्यकता रहती है ताकि मनुष्य की सुरत को सावधानी मिलती रहे।

यार बुलाये भाव से, मो पै गया न जाय।
घन मेल पिउ ऊजला, लाग न सक्के पाय॥

हम लोगों में कठिनता यह है कि हमारी सुरत पर मैला-पन रहता है। यह मैलापन केवल हमारी नाना प्रकार की वासनायें और इच्छायें हैं। चाहे अच्छी हों या बुरी। इसलिये एक दृष्टि से यह मार्ग महा कठिन है मगर जिनको जरूरत है अथवा जो जिज्ञासू हैं उनके लिये आसान है। वासना जब पैदा होती है अज्ञान से पैदा होती है। अज्ञान भ्रम है।

जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तो सम्मुख खड़ा, लाग कबीरा पाय॥

जब तक अज्ञान है और भ्रम है तब तक उस अवस्था को पाना कठिन है। मैं इसकी खोज में निकला था। अनुभव

ने सिद्ध किया कि जिसको भी इष्ट (माबूद) बना कर पूजता था वह वास्तव में मेरी अपनी कल्पना से बना था। यह मेरा भ्रम था और अज्ञान था। यह अनुभव मुझको सत्संगियों के अनुभव के बाद हुआ। तो जो कुछ बाकी रहा वह मालिक का रूप है। अपना निज स्वरूप है। कभी-कभी उसमें ठहरता हूँ मगर हमेशा के लिये ठहरना अभी तक असम्भव हो रहा है।

जो आवे तो जाय नहिं, जाय के कहाँ समाय।
अथक कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥

उस स्थान से जिसका जिक्र मैंने किया है जो तमाम कल्पनाओं से ऊँचा है वहां से कौन आता है? असल में न कोई आता है न जाता है। वह जो स्वयं निजस्वरूप है, परमतत्व है, उसको अपना रूप कहलो, कुछ और कहलो। जब उसका रुख नीचे की ओर होता है वह महसूस करता है कि मैं आया हूँ और जब अपनी ओर रुख करता है अर्थात् सुरत अपने स्वरूप की ओर रुख करती है या मालिक की ओर तवज्जह करती है तो उसका भ्रम कि मैं आया हूं समाप्त हो जाता है। वह भ्रम तब जायगा जब प्रेम की या लगन की या खोज की इन्तहा (पराकाष्ठा) हो जायगी। इसके पहले नहीं।

कौन देश ते आइया, जाने कोई नाहिं।
वह मारग पावे नहीं, भूल पड़ी जग माहिं ॥

हर एक मनुष्य अपनी अंतरी कुरेद को मिटाने के लिये विभिन्न रूपों में उसकी खोज करता है। कबीर साहब तो कहते ही हैं कि जगत में भूल है मगर मेरे अनुभव में भी आया है कि मैंने जीवन में जितना खेल खेला वह भूल थी। वह भूल इस पिछली उम्र में समाप्त हुई। भूल यही थी कि मैं उसको

कभी मंदिर में, कभी किसी रूप में, कभी किसी आकार में मान कर चलता था। आचार्य बनने पर अनुभव ने आँख खोल दीं।

नांव न जाने गांव का, बिन जाने कहाँ जांव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस है गांव ॥

हर एक आदमी उसको किसी न किसी रूप में मानता है। किसी ने जड़ कहा, जड़ का कोई रूप माना। किसी ने चैतन्य का रूप माना। अनुभव ने सिद्ध किया कि न वह जड़ है न वह चैतन्य है किन्तु इस से परे की हालत है जिसे संत अलख, अगम या अनाम का नाम देते हैं।

सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहि आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा आय ॥

यह भेद दाता दयाल ने मुझको दिया। वह शब्दों से या बातों से समझा समझा कर हार गये। अन्त में उन्होंने गुरु पदवी देकर मुझे यकीन करा दिया कि वह मालिक या वह वस्तु जिसकी मैं खोज करता था वह रूप रंग रेखा, साकार निराकार, जड़ चेतन से परे है। उसे किसी ने निज स्वरूप कहा, किसी ने मालिके कुल कहा, किसीने अकाल कहा, किसीने अगम कहा और किसी ने राम कहा।

सबसे मैं पूछत फिरूँ, रहन कहे नहिं कोय।
प्रीति न जोड़े राम से, रहन कहाँ से होय ॥

रहन कहते हैं ठहराव को। किसी जगह हम कुछ दिनों ठहरते हैं। वह रहने की जगह बन जाती है। मेरा अनुभव बता रहा है कि सुरत हर समय चलती रहती है। कभी कहीं ठहरी कभी कहीं ठहरी। हर एक ठहराव के बाद उत्थान होता है। स्थायी रूप से ठहराव है अपने ही स्वरूप में, अपने

ही आप में अथवा उस मालिक में। तो जब तक कोई सुरत इस भेद को समझ कर अपने आप में ठहर नहीं जाती उसे कहीं भी ठहराव नहीं है। मेरा लिखना लिखाना, सत्संग कराना, व्यवहार करना क्या है ? यात्रा या चलना ही तो है।

चलन चलन सब कोई कहे, मोहिं अंदेशा और।
साहिब सों परिचय नहीं, पहुँचोगे किस ठौर॥

मनुष्य को जब तक इष्ट पद या अभीष्ट स्थान या मंजिले मकसूद का ज्ञान नहीं होता, जीवन यात्रा समाप्त नहीं होती। जन्म जन्मांतर बीत जायेंगे मगर ठहराव न होगा। यही आवागमन है। इसी से बचने का इलाज किसी कबीर जैसे महापुरुष के सत्संग से राज (रहस्य) को समझ कर सुरत का अपने आप में ही ठहराना और उसके लिये साधन करना है। जीवन के बहुत अनुभव के बाद मैं संत मत को या संतों के विचार को सत मानने के लिये विवश हुआ हूं।

जाने को तो गम नहीं, रहने को नहिं ठौर।
कहें कबीर सुन साधवा, अबिगत की गति और।

कबीर ने जो कहा है वह ठीक है मगर इस भाव को समझना महा कठिन है। समझता हूं मगर वर्णन करना कठिन है। केवल इतना संकेत किये देता हूँ कि जाने और आने का ख्याल माया है और काल है, अज्ञान है और भ्रम है।

कबिरा मारग कठिन है, कोई न सक्का जाय।
गये तो बहुरे भी नहीं, कुशल कहे को आय॥

मेरा अनुभव यह बताता है कि जीवन चेतन का बुलबुला है। जब तक है वह संसार को महसूस करता है। जब समाप्त हुआ, जब बुलबुला टूटा। कोई क्या कहेगा ! कौन आयेगा कौन बतायेगा ! अभी मेरा बुलबुला कायम है। होश में

आकर सोचता हूँ क्या कहता है क्या लिखता है। किसको लिखता है! मौज! गूंगे का गुड़! सैन बैन! इसके अतिरिक्त कुछ कहा नहीं जाता!

कबीर का घर शिखर पर, जहां सिलहली गैल।
पाँव न टिके पिपीलका, पंडित लादे बैल॥

वही बात मैंने कही है। कहना या उपदेश करना क्या है? वेद शास्त्र भी तो कहते ही हैं ना? पुस्तकें भी उपदेश करती हैं। किसी ने पुस्तकें पढ़ी, किसी ने सत्संग के बचन सुने। क्या पढ़ने और सुनने से मनुष्य की सुरत उस पद पर ठहर सकती है? नहीं। यह ठहरना सुरत के अपने अमल से होगा अर्थात् सुरत को शब्द के द्वारा अपने देश में, अपने आप में, अपने रूप में वापिस ले जाना। यह न पढ़ने से मिलता है न सुनने से मिलता है। केवल नाम के सहारे से वह अवस्था प्राप्त हो सकती है और यह नाम केवल सुरत से जपा जाता है।

जहाँ न चिउंटी चढ़ सके, राई ना ठहराय।
मनुआं तहाँ ले राखिये, सोई पहुंचा जाय॥

मेरा अपना जीवन मेरे सामने है। कबीर साहब कहते हैं कि जहाँ चिउंटी नहीं चढ़ सकती। राई वहाँ ठहर नहीं सकती। चिउंटी जब किसी जगह पर चढ़ेगी, अपने पाँव को कहीं जमायेगी।

मैं अभ्यास करता आ रहा हूं। जब तक सुरत किसी जगह ठहरती है वह स्थान और है और सुरत और है। जब सुरत के तमाम सहारे टूट जाते हैं तो फिर जो वस्तु शेष रह जाती है वह सार तत्व है। वह अपना स्वरूप है। वह मालिक है कहना कठिन! अमल करना कठिन! मुझ पर तो दाताद्याल

(महर्षि शिव) ने दया करदी। मुझे जब से यह अनुभव हुआ कि तू किसी के अन्दर जाता नहीं तब से इस अवस्था में ठहरने का साधन मेरे हाथ आया। वह साधन है केवल एक प्रकार का खिचाव। उस खिचाव का दूसरा नाम है प्रेम। इसलिये जिस में प्रेम नहीं है वह इस गति को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके साथ ही है सत्संग, जहाँ से असलियत या सार भेद मिले। बिना सार भेद के मिले मनुष्य लाख कोशिश करे वह इस अवस्था को पहुँच नहीं सकता।

कबीर मारग कठिन है, ऋषि मुनि बैठे थाक।
तहाँ कबीरा चढ़ गया, गहि सतगुरु की साक॥

यही बात मैंने ऊपर कही है कि ऋषि मुनि कोई भी वहाँ नहीं जा सकता, जब तक कोई सत्गुरु न मिले मगर सत्गुरु की बात को समझना सुगम नहीं है।

सुर नर थाके मुनि जना, तहाँ न कोई जाय।
मोटा भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके विष्णु महेश।
तहां कबीरा चढ़ गया, सत्गुरु के उपदेश॥
अगमहुँ ते जो अगम है, अपरम्पार अपार।
तहाँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ खरा निर्धार॥

इस अवस्था में जाने के लिये जब तक मन साथ में है पहुँचना कठिन है क्योंकि मन कुछ न कुछ गति करता रहता है, विचार उठाता रहता है; रूप बनाता रहता है। वह परे की अवस्था है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया, तुरियातीत में मन खेल करता है। सोचता हूँ कि इस मन से छुटकारा पाना क्या आसान है? नहीं। अन्तःकरण के ऊपर जन्म जन्मान्तरों के संस्कार तथा इस जीवन के संस्कार मौजूद हैं। वह मुझपर

भी उठते रहते हैं मगर चूँकि दाता दयाल (महर्षि शिव) के शुद्ध स्वरूप से संस्कार मिला हुआ है और उसका विश्वास हो चुका है इसलिये मेरे अन्तर भी मन काम करता है मगर उस ज्ञान से, उस उपदेश से मैं इसमें फंसता नहीं। आज रात को स्वप्न में था। जानता था कि स्वप्न देख रहा हूँ। स्वप्न में मेरे छोटे भाई राय साहब सुरेन्द्रनाथ और उनका लड़का शिवेन्द्र के तथा स्टेशन पर मेरे नौकरी के दृश्य थे और साथ ही प्रकाश का एक गुब्बारा और शब्द मौजूद था। सुरत जानती थी कि यह स्वप्न है और वह प्रकाश और शब्द की ओर अपना खिंचाव रखती थी। इस प्रकार जब तक मनुष्य को असलियत का संस्कार नहीं मिला हुआ होता वह इस काल और माया के चक्र से कभी निकल नहीं सकता।

जेहि पेड़े पंडित गये, तेही गये बहीर[1]। १ बहुतेरे
औघट घाटी राम की, तहां चढ़ रहे कबीर ॥

अभी इस मन के चक्र से स्थायी रूप से अलग नहीं हुआ मगर आस है कि सतगुरु की याद हर समय साथ रही तो इससे निकल जाऊँगा। सतगुरु की याद क्या है? संसार को कुछ कहना चाहता हूं कि फकीरचन्द सतगुरु की याद या फकीरचन्द की दाड़ी मूछों की याद असली और सच्चे सतगुरु की याद नहीं है। असली सतगुरु ज्ञान है, राज है, भेद है। यह फकीरचन्द की याद या फकीरचन्द के रूप की याद केवल मन के विचारों को छुड़ाकर एक ख्याल देना है और एक ख्याल का लेना प्रारम्भिक श्रेणी में अत्यन्त आवश्यक है। कोई गलत न समझे। श्रेणियाँ हैं। जब तक लड़का पढ़ता है तब तक पुस्तक, स्कूल और मास्टर की आवश्यकता है।

घाट ही पानी सब भरें, औघट भरे न कोय।
औघट घाट कबीर की, भरे सो निर्मल होय॥

घाट से पानी भरने से अभिप्राय उस आनन्द को किसी सहारे से प्राप्त करना है। अन्तिम अवस्था में घाट यानी सहारा नहीं रहता क्योंकि वह जो आनन्द है वह वास्तव में हमारा अपना ही रूप है।

चलते चलते पग थके, निपट करारे कोस।
बिन दयाल झलका पड़े, का को दीजे दोस॥

सब दुनिया ही उसकी खोज में सहारा लेकर चल रही है। कोई किसी ख्याल से आनन्द लेता है, कोई किसी सहारे से आनन्द लेता है। कोई सुमिरन के सहारे से, कोई ध्यान के सहारे से आनन्द लेता है। समय आता है जब वह सहारा टूट जाता है। तुम स्वयं देखो कि आनन्द लेने को कई बार सुमिरन करके सहारा लेते हो, कभी ध्यान से सहारा लेते हो मगर किसी समय लाख कोशिश करते हो न सुमिरन ही वनता है और न रूप ही बनता है, इसलिये जब तक कोई दयालु गुरु किसी को नहीं मिलता और वह भेद नहीं बताता, मनुष्य को अपने आप में आप सहारा लेने की या आनन्द लेने की शक्ति नहीं आती।

बाट बेचारा क्या करे, पन्थिन चले सुधार।
सीधा मारग छोड़ कर, चलै उजाड़ उजाड़॥

कबीर साहब ने जो कुछ लिखा सत्य लिखा। इसलिये राधा स्वामी मत बार बार कहता हैं कि पूरा गुरु खोज करो जो सार भेद का ज्ञाता हो। जो स्वयं बिना सहारे रहता हुआ अपने स्वरूप में ठहर सकता है वह गुरु है। जो स्वयं किसी का सहारा लेकर चलता है उसके पास से तुमको इस अन्तिम

अवस्था का संस्कार नहीं मिल सकता। बात बहुत ऊंची है।

कौन देश से आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष को नाम॥

ऐसा गुरु कौन है कबीर सवाल करता है। इसका उत्तर है:—

अमर लोक से आइया, सुख सागर के ठाम।
जाति अजाती है मेरी, सत्त पुरुष का नाम॥

ऐसा पुरुष अपने ही रूप में। जो बे सहारे के रहता है, रहने वाला है, उसकी जाति कोई नहीं है। यहाँ वह कहाँ रहता है? सुख सागर में। बे फिक्र, बेगम, बे चिन्त, बे परवाह। यह सुख सागर से अभिप्राय है। ऐसे पुरुष को सत्पुरुष कहते हैं। हर एक सुरत वही है। वह इस मन और देह से परे है, जिनके प्रभावों के कारण अपने अजर और अमरपने को भूला हुआ है। ऐसे सत्पुरुष दूसरों को सार भेद या सार ज्ञान बता कर अपने जैसा बना लेते हैं। बस यही गुरु मत है।

प्र०—कौन तुम्हारी ज़ात है, कौन तुम्हारा नाँव।
कौन तुम्हारा इष्ट है, कौन तुम्हारा गांव॥
उ०—ज़ात हमारी आत्मा, प्राण हमारा, गाँव।
अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा गांव॥

कबीर ने निर्णय कर दिया कि हमारा जो स्वस्वरूप है वह वह अवस्था है जो अजर और अमर है आत्मा। आत्मा क्या है? शब्द और प्रकाश का भंडार जैसा मैं ने अपने रात के स्वप्न में जो अवस्था थी उसका जिक्र किया है। हर एक आदमी का रूप शब्द है। वही अजर और अमर है। देह में रहते हुये उसकी धार नीचे देह में आती रहती है। उस धार का नाम प्राण है। प्राण की स्थूल अवस्था का नाम सांस है। उस आत्मा का इष्ट अलख है अर्थात् वह जो मेरे अंतर

में शब्द और प्रकाश स्वरूप है। वह किसी ऐसी ओर अंतर में खिंचा रहता है जिसका नाम और रूप नहीं।

वह जो केन्द्र है जिसकी ओर मैं मन और रूप रंग रेखाओं को छोड़ कर शब्द और प्रकाश का रूप होता हुआ खिंचा रहता हूँ इस केन्द्र का नाम अलख है और यह खिंचाव जब होगा दिमाग के अंदर रहने से होगा। इस अनुभव के आधार पर विवश मुझे कबीर की वाणी के साथ सहमत होना पड़ता है।

प्र०—कहाँ से आया जीव यह, किस में जाय समाय।
कौन डोर से चढ़ चला, कहो मुझे समझाय॥
उ०—सगुन से आया जीव यह, निर्गुन जाय समाय।
सुरत डोर ले चढ़ चला, सतगुरु दिया बताय॥

यह शब्द असलियत हकीकत की जान है। जीव गति उस समय तक है जब तक स्थूल देह है। अगर देह नहीं तो जीव पना भी नहीं है। प्रकाश की शक्ति या प्रकाश की किरणें स्थूल माद्दा को पैदा करती हैं। उसके क्षोभ से जीव पैदा होता है। सगुन अर्थात् देह के होने के कारण जीव दशा पैदा होती है और यह जीव दशा फिर निगुण अर्थात् मन में चली जाती है। यह रचना जो प्रकाश रूपी ब्रह्म से होती है इसका आधार सत है सुरत है। जीव गति जब समाप्त हो जाती है और सुरत गति जब निरत हो जाती है तो वह एक ही तत्व रह जाता है। अलग होने का भ्रम समाप्त हो जाता है। जिसकी सुरत बे सहारे होकर अपने निज स्वरूप में लय हो गई वह अंश से पूर्ण हो गया। वहाँ फिर खामोशी (मौनता) है। कहना सुनना सोच विचार सब समाप्त। गुरु चेला गायब! जैसे बिजली की गति एलेकट्रिक फोर्स बैटरी में हर समय मौजूद है वह दायम और कायम है। जब विछोह हुआ

वह करैन्ट बन गई। फिर वापिस अपने घर चली गई। वैसे ही मन यानी करेंट बनी, इस खेल में भ्रम पैदा हुआ, खेल खेला और अपने केन्द्र में वापिस चला गई। फिर जीवन क्या है ?

'लब खुले और बंद हुये यह राजे जिन्दगानी है। जब जिसको यह अनुभव हो जाता है उसके लिये संसार गायब हो जाता है। यहाँ पहुँचकर वह मौन हो जाता है मगर कोई भाग्यशाली इस गति को पहुंचता है। अब कहने सुनने की बात नहीं। देखा देखी, पेखा पेखी, रहनी सहनी का मामला है।

यहाँ तक कल कहा गया था, चूँकि आगे कुछ कहा नहीं जा सकता था। सारी रात सुरत खोपड़ी में शब्द को सुनती रही। पेशाब जो मुझे रात को पाँच छः दफा आता था उसके कारण वह भी न आया। मैं होश में आकर सोचता हूं कि यदि यही इष्ट पद है तो देह में आना क्यों होता है समझ नहीं आती। कबीर साहब आगे कहते हैं:—

नहिं वहाँ आवागवन है, नहिं धरती आकास।
तहाँ कबीरा सन्त जन, साहिब पास खवास॥

यह ठीक है कि जब सुरत वहाँ होती है तो आवागवन नहीं है। आवागवन तब होता है जब सुरत शब्द को छोड़कर कोई और अहसास अपने अंतर पैदा करती है। तो जब तक यह देह है उत्थान होता है। मेरा ही नहीं हर एक का उत्थान होता है। किसी संत का यह कह देना कि मैं २४ घंटे वहाँ रहता हूँ और बात है और असली पहलू और बात है।

साहब की गति अगम है, चल अपने अनुमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचेगा परमान'॥ (१) अवश्य मेरा विचार ठीक निकला कि वह जो मालिक है जिसे

कोई बेश्रंत कहता है और कोई आपा या निज स्वरूप कहता है, उसकी गति का कबीर को भी पता नहीं लगा। जिस तरह मैं हैरान होता हूँ कि यदि वह नाम या चौथा पद, जहां देह और मन के भान-बोध समाप्त हो जाते हैं, ही इष्ट पद होता तो कबीर क्यों कहता—

साहब की गति अगम है, चल अपने अनुमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुंचेगा परमान॥

कबीर साहब का कथन है कि अपने अनुमान से चलता रह। अपने अनुभव को सामने रखता हुआ अपनी तवज्जह को सामने रखता हुआ ऐ इंसान! तू चलता रह। किसी दिन पहुँच जायगा। पहुँचना कहाँ है? सफर करता हुआ चल रहा हूं। क्या खबर कहाँ पहुँचूं।

गागर ऊपर गागरी, चूल्हे ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरी, वहाँ बुलावे यार॥

गागर यह देह है। इसके ऊपर सिर है। चूल्हा मन की तड़प या किसी वस्तु की वासना है और द्वार रूपी हमारा जीवन इस हमारी आस पर स्थित है। यह चूल्हे पर द्वार का अर्थ मैं समझता हूँ। जब तक यह सब प्रकार की आस समाप्त नहीं होती यह कुरेद नहीं मिटती।

प्र०—कौन सुरत ले आवई, कौन सुरत लेजाय।
कौन सुरत है अस्थरी, सो गुरु देव बताय॥

यह मेरे प्रश्न का उत्तर है। इतना चढ़ने के बाद भी क्यों वापिस आता हूं। इसका उत्तर कबीर देते हैं:—

बास सुरत ले आवई, शब्द सुरत लेजाय।
परिचय सुरत है अस्थरी, सो गुरु दिया बताय॥

अब पता लग गया कि मैं क्यों आता हूं। इसलिये कि

अभी वासना कारण रूप में मौजूद है। यह वासना क्या है? हमारे देह, मन और दिमाग की प्रकृति है उसका गुन वह वासना है। जब तक जीवन है इसमें वासना का होना लाजिमी है। संतों ने जहाँ सत पद का जिक्र किया है वहां लिखा है कि सतलोक में १४ पुत्र उत्पन्न होते हैं अर्थात् १४ प्रकार के भान बोध बीज रूप में मौजूद हैं। चूंकि शब्द में, शब्द के भडार में रचना की शक्ति है इसलिये शब्द में १४ प्रकार के भान बोध बीज रूप में मौजूद रहते हैं। इसलिये उत्थान होता रहता है। बात समझ में आगई। अगला रास्ता मिल गया। वह रास्ता क्या है? शब्द को सुनते सुनते अशब्द गति में जाना।

बिन पांवन की राह है, बिन वस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहें कबीर संदेस॥

फिर वह मालिक न शब्द रूप है न प्रकाश स्वरूप है। शब्द भी देह है यद्यपि यह निर्मल चेतन है। प्रकाश भी अस्तित्व रखता है जो केवल चेतन्य है। मन भी देह रखता है. जिसमें विचार रूपी माया शामिल रहती है। देह तो है ही देह।

पहुंचेंगे तब कहेंगे, अब कुछ कहा न जाय।
सिन्ध समाना बुन्द में, दरिया लहर समाय॥

मुझे संशय हुआ था कि मैं वहाँ से क्यों आजाता हूँ। इस संशय से कमजोरी प्रतीत हुई थी मगर यहाँ कबीर का भी यही हाल है। वह कहते हैं—

पहुंचेंगे तब कहेंगे ....

ज्ञात नहीं कबीर ने क्या कहना था। और यह भी ज्ञात नहीं कि मैं क्या कहूंगा, या क्या कहना है। जीवन की दशा यह

है कि उस अनाम पद, अनन्त पद, अकाल पद के क्षोभ से पैदा हुआ और उसमें ऐसे समा गया जिस तरह बुलबुला उठा, समुद्र में लय हुआ; जैसे लहर नदी से उठी और नदी में समा गई। यह रचना अनादि है। क्षोभ के क्रम में श्रम हुआ, जीवन की खोज हुई। खोपड़ी में चढ़े, तब उसका अनुभव हुआ। मुझे जो हुआ वह कहता हूँ। जीवन क्या है? लव खुले और बन्द हुये।

प्राण पिंड को तज चला, छूट गया जंजाल।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार॥

यह जीवन का परिणाम है। मुझे खुशी है कि मेरा अपना अनुभव कबीर के अनुभव से मेल खाता है। इस अनुभव के आधार पर यदि कहदूँ कि सन्त इसलिये प्रगट हुये कि संसार के धार्मिक और पाँथिक जगत को यह बतादें कि तुमने अपने अज्ञान से मानव वंश को इस खुदा, ईश्वर, परमेश्वर के नाम पर जो बाँटा हुआ है यह तुम्हारी भूल है। मुझे आज अत्यंत प्रसन्नता है कि मैं ने अपते जीवन के अनुभव के बाद जो आवाज उठाई है कि 'इंसान बनो' वह सोलह आने सत्य है। इस कलियुग में संतों ने धार्मिक और पाँथिक दुनिया के अज्ञान को मिटाने के लिये सुरत शब्द योग के सहारे या नाम के सहारे संसार को सच्ची बुद्धि, सच्ची समझ देने का प्रयत्न किया है। कभी समय था मेरे चित्त पर इन शब्दों का—

'सतयुग त्रेता, द्वापर वीता।
काहु न जानी शब्द की रीता॥
कलियुग में स्वामी दया विचारी।
परगट कर के शब्द पुकारी॥'

प्रभाव पड़ता था और मैं भ्रम ग्रस्त हुआ करता था। अब

शान्ति मिल गई।

हर युग में या समय में इस शाँति के प्राप्त करनेके लिये महा-पुरुषों ने अनेक प्रकार की विचार धारायें पैदा कीं। अनेक बिचार धाराओं के होने से मानव जाति बटती चली गई। द्वैतवादी, अद्वैत वादी, शरीयत वाले, उपासक, भक्त, योगी, ज्ञानी, जैन, बौद्ध,ईसाई,मुसलमान, यहूदी यह कौन हैं? यह विभिन्न बिचार धाराओं के मानने वाले। अब मैं महसूस करता हूँ कि सबके सब अधूरे और अपूर्ण विचारों के मालिक हैं। इस कलियुग में बुद्ध अवतार का ज़ोर है और संतों का मार्ग, इस सुमिरन ध्यान और भजन और सत्संग के सिलसिले में इंसान की बुद्धि को निर्मल करके, शान्ति, एकता और प्रेम की नींव डालता है।

कोई सुने या न सुने, इस कर्म से मेरी भी गुत्थी सुलझ गई। मैं ने जो कुछ किया मौज आधीन अपने लिये किया। यदि मेरे कर्म से किसी को लाभ पहुँचे तो मौज जाने।



(५) अलख और लख की व्याख्या

भाई कोई सतगुरु सन्त कहावै। नैनन अलख लखावै॥
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेश दृढ़ावै।
प्रान-पूज्य किरियातें न्यारा, सहज समाधि सिखावै॥१॥
द्वार न रूँधे पवन न रोकै, नहिं अनहद अरुझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जब हीं, परमातम दरसावै॥२॥
करम करे निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नहिं मनमें, भोगमें जोग जगावै॥३॥
धरती त्याग अकास हुँ त्यागै, अधर मढ़ैया छावै।
सुन्न सिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावै॥४॥

भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न आवै।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागवन मिटावै ॥५॥

मेरा जीवन इस अलख को लखने में व्यतीत हुआ है। दाता दयाल (महर्षि शिव) ने नाम दान दिया था और काम दिया था। अपने जीवन के अनुभव के आधार पर अपने कर्म भोग वश टूटे फूटे शब्दों में कहता हूँ कि मैंने अलख को क्या समझा। जो समझा अनुभव किया और पेखा वह कबीर के शब्द के साथ मेल खाता है अथवा मैं कबीर की वाणी को अपने अनुभव जैसा समझता हूं इसलिये साहस करके कहता हूं—

साधो सतगुरु अलख लखाया,
जब आप आप दरसाया ॥

आप आपको कैसे पाया ? मैं बचपन में किसी वस्तु को इष्ट बना कर दूसरा समझ कर उससे प्रेम करता था। कभी राम, कभी कृष्ण, कभी ईश्वर, कभी साकार, कभी निराकार, कभी शब्द कभी प्रकाश और कभी दाता दयाल (महर्षि शिव) का पुजारी था। दातादयाल ने दया करके आचार्य पदवी दी। सत्संगियों के अनुभवों ने यह विश्वास करने को विवश कर दिया कि जितने मेरे अंतर में दृश्य, इष्ट, विचार पैदा होते थे वह सब मेरे अंतर से ही बनते थे। उनको बनाने वाला मेरा अपना आपा था। अभी समाधि से उठा हूं। समाधि में कहाँ था ? इन समस्त विचार, रूप, रंग, शब्द और प्रकाश से परे एक तत्व है, उसका रूप बना हुआ था। वह अवस्था क्या है ? सैन बैन के सिवा कोई शब्द नहीं मिलते जो वर्णन करूँ। हाँ मुझे विश्वास हो गया कि तत्व एक

है। वह हर एक व्यक्ति के अंदर छोटे रूप में हैं और ब्रह्माण्ड में बड़े रूप में हैं।

बीज मध्य ज्यों वृच्छा दरसे, वृच्छा मद्धे छाया।
परमातम में आतम तैसे, आतम मद्धे माया॥

जिस तरह बीज के अंदर से वृक्ष बन जाता है और उस वृक्ष की छाया हो जाती है. ऐसे ही वह जो परम तत्व है या मैं अपने आपमें विचार करता हूँ, वह मेरा जो अपना रूप है आदि, जिसका मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसमें से क्षोभ पैदा होकर 'मैं' बनती है जो बीज रूप है। वह बीज रूप परमात्मा है॥उसमें से व्यक्तित्व बनता है। उस व्यक्तित्व से विचार या संकल्प उठते हैं। वह संकल्प माया हैं या छाया हैं।

ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये, सुन्न अंड आकारा।
निःअच्छर तें अच्छर तैसे, अच्छर छर विस्तारा॥

जिस तरह मेरा मन उस अलख गति से बनकर जो कारन रूप में या बीज रूप में रहता है वह सुन्न की अवस्था है। वह जो मन एकाग्र हुआ दिमाग में एक जगह घेरता है वह अंडा है और वही निःअक्षर है। उससे धारें निकल कर या वृतियाँ निकलकर अक्षर के रूप या निराकार रूपमें प्रगट होती हैं और वही निराकार वृतियां क्षर, साकार, स्थूल रूप धरती हैं। यही कारण है कि हर एक प्राणी अपनी ही वृतियाँ अपने अन्तर से निकाल कर अपने साँचे रूप बनाता है। जिस तरह से मनुष्य अपनी दुनियाँ बनाता है उसी तरह वह परमातमा अपने अन्तर से वृतियाँ निकाल कर साकार (स्थूल) रचना रचता है। वह जो परमात्मा है वह सच्चा कृष्ण है, वही सोहंग है, वही कर्त्ता पुरुष है। उसी को सन्त काल कहते हैं। वही खुदा है।

ज्यों रवि मद्धे किरन देखिये, किरने मध्य प्रकासा।
परमातम तें जीव ब्रह्म इमि, जीव मध्य तिमि स्वाँसा॥

जिस तरह सूर्य में किरन है और उस किरन से प्रकाश व्यक्त हो रहा है, ऐसे ही उस सूर्य रूपी अलख से जो हिलोर के कारण या क्षोभ के कारण धार फूटती है वह अपने अन्तर से प्रकाश को पैदा करके अनेक प्रकार की रचना बनाती रहती है। यह ब्रह्म क्या है? वह किरन का प्रकाश है। दुनिया मानेगी नहीं। ब्रह्म एक नहीं है किन्तु अनेक हैं। कबीर ने इक्कीस ब्रह्माण्ड अपनी बाणी में कहे हैं। किसी जगह पाँच ब्रह्माण्ड और पाँच अंड का जिक्र है। हमारे अंतर पाँच प्रकार के प्रकाश हैं। असली तत्व एक ज़ात (निज स्वरूप) है। उसमें से अनेक प्रकार की रचना होती रहती है और वह अलख सबका आधार है। तुम अपने मन को देखो। एक ख्याल से अनेक ख्याल पैदा होते हैं। मैं अपने अनुभव से इस रचना को देखता रहता हूँ गो दूसरे को विश्वास कराने के लिये मेरे पास उचित शब्द नहीं हैं मगर है यह सच।

स्वांसा मद्धे शब्द देखिये, अर्थ शब्द के माँहीं।
ब्रह्म ते जीव जीव तें मन यों, न्यारा मिला सदाहीं॥

हमारा साँस चलता है। उससे आवाज़ आती है। इसी तरह उस अलख पुरुष में जब गति होती है तो उस गति में आवाज या शब्द होता है। उस आवाज से या शब्द से प्रकाश पैदा होता है। वह प्रकाश ब्रह्म है। फिर प्रकाश से जीव बनता है। फिर जीव से मन बनता है। यह सारी रचना एक मुअम्मा (पहेली या रहस्य) है। जिसकी समझ में आ जाता है वह इस रचना के गोरखधंधे में फंसता नहीं है। मै इस अन-समझी के कारण दुख सुख उठाता था। अब 'आपा' समझ में

आगया. अतः संसार दुख सुख का कारण नहीं बनता। ज्ञान की अग्नि ने भ्रम, खोज, पूजा, सेवा सब समाप्त कर दिये और शान्ति मिल गई।

आपहि बीज बृच्छ अंकूरा. आप फूल फल छाया।
आप ही सूर किरन परकासा, आप ब्रह्म जिव माया॥

मुझे सिद्ध हो गया कि मेरा अपना ही आप था जो भ्रम में आकर कुछ का कुछ समझकर जीवन में दौड़ धूप करता रहा। यह सब खेल उस एक शक्ति का है। कबीर ने इस अवसर पर इसको अलख कह दिया। हिन्दू शास्त्रों ने परम तत्व कह दिया। मुसलमानों ने कोई और शब्द गढ़ दिया। सब सम्प्रदाय वालों ने शब्द गढ़े मगर अमल के बिना अज्ञान वश हकीकत से गुमराह होकर भटक गये। इस भटकना को दूर करने के लिये वह अलख पुरुष, परम तत्व या ज़ात या कोई और नाम रक्खो स्वयं मानव रूप में आकर कबीर को तरह, स्वामीजी की तरह. दातादयाल महर्षि शिव) की तरह असलियत और सार तत्व का वर्णन कर जाता है। मेरे लिये चूंकि निबल, अबल, अज्ञानी जीवों को काम करना था और जगत के कल्याण का संस्कार था इसलिये जो समझा वह कह रहा हूँ कि जितने इस असलियत और सचाई या परम तत्व के ज्ञान की प्राप्ति के लिये धर्म. पंथ और सम्प्रदाय बने हैं यह सब के सब असलियत से अनजान होने के कारण परस्पर पक्षपात और द्वेष रखते हैं। यदि यह रहस्य समझ में आ जाय तो जिनको समझ में आजायगा वह स्वतन्त्र (बंधन मुक्त) हो जायेंगे।

अंडाकार सुन्न नभ आपै, स्वाँस शब्द अरथाया।
नि:अच्छर अच्छर छर आपै मन जिव ब्रह्म समाया॥

इसका भाव वही है जो ऊपर बर्णन कर दिया है।

आतम में परमातम दरसै, परमातम में झाईं।
झाईं में परछाईं दरसै, लख कबीरा साईं॥

हमारे आत्म स्वरूप, अर्थात् जो कारन रूप बना है जो पहिले बीज रूप बना था, के कारण हम दोनों निचली अवस्थाओं और ऊपर की अवस्थाओं को देख सकते हैं और वह देखने वाला जो है वही कबीर का रूप है। प्रत्येक मनुष्य कबीर का रूप है। चूंकि भ्रम है और गुरु नहीं मिला इसलिये हम अपने आपको कुछ न कुछ समझते रहते हैं। हर एक मनुष्य का आत्मा स्वयं इस कबीर का ही रूप है और यह रूप उस अलख पुरुष के क्षोभ से बनता है। मुझे इस समझ से अब सब मनुष्य अपने जैसे या अपने भाई प्रतीत होते हैं। ऐसी समझ का प्राप्त करना ही इंसानियत है।

जब तक अपना आत्म स्वरूप कायम है तब तक वह ऊपर और नीचे की समस्त रचना का आनन्द ले सकता है। यदि ऊपर चढ़ गया तो सब कुछ खो गया। यदि नीचे आ गया तो दुख और सुख का शिकार हुआ। मैं नहीं कह सकता कि कब तक मेरा यह आत्म स्वरूप बिल्कुल समाप्त होगा। किसी किसी समय जब यह अपना अस्तित्व (हस्ती) खोता है तो 'चिराग गुल पगड़ी गायब' वाली बात हो जाती है। न मैं, न तू और न वह। इसलिये मेरी समझ में यह आया है कि यदि इंसान अमली पहलू से (क्रियात्मक रूप से) स्वयं अनुभव नहीं कर सकता तो उसे केवल अक्ली पहलू (बुद्धि) से ही यह विश्वास हो जाय कि असलियत क्या है तो मनुष्य का मत भेद, ईर्ष्या द्वेष, जो अपने अज्ञान वश इस संसार में रखता है, मिट जाय। फिर ऐसे व्यक्ति के लिये केवल

अपने अंतर अपने मन के संकल्प विकल्प की खेंच तान ही बाकी रहेगी और वह केवल उसके अपने ही अस्तित्व तक सीमित रहेगी। उसकी खेंचतान से वह स्वयं ही दुख सुख का भान करेगा मगर उसके इस कर्म से दूसरों को कोई हानि नहीं हो सकती और न कुकर्म हो सकता है। फिर उसको अपने मन की खेंच तान दूर करने के लिये अपने अंतर में केवल साधन की आवश्यकता पड़ेगी जिससे कि उसके चित्त की वतियाँ ठहर जांय। इसलिये सबसे पहिले सत्संग की आवश्यकता है ताकि कम से कम बुद्धि से ही समझ आजाये जिससे वह बहिर मुखता के दोष से बच जाय। फिर उसको अपने अंतर का ही साधन रह जाता है।

अब मैं अकेला सोचता हूँ कि इस शिक्षा से आम पबलिक को क्या लाभ ! बात बहुत ऊँची है। सर्व साधारण समझ नहीं सकते। कई बार सोचा करता हूँ कि मेरे इस कर्म का कोई लाभ नहीं। जब ऐसा सोचता हूँ तो फिर यह जितना मैंने कर्म किया है सब निरर्थक प्रतीत होता है। फिर भी जो कुछ मैंने अनुभव किया है और जो कुछ इस समय तक संसार में हो रहा है इस के आधार पर मुझे यह ज्ञात हो रहा है कि चूंकि साधारण मानव जाति इस अज्ञान के कारण अपनी माया बुद्धि के चक्र में आई हुई है और उसके संकल्प विकल्पों का प्रभाव जो स्थूल रूप उत्पन्न करता है तो मुझे यह मानना पड़ता है कि मानव जाति का भविष्य बड़ा भयानक होगा।

महाभारत में जो परस्पर ईर्ष्या द्वेष जो कौरवों और पांडवों में था उसके कारण महाभारत की लड़ाई हुई और मानव जाति का जो परिणाम हुआ वह सब जानते हैं। पहिले महा युद्ध और भारत के विभाजन का अनुभव मुझे है। क्या

खबर आगे होने वाली तबाही का दृश्य शायद देखूँ। चूँकि मेरे अनुभव के आधार पर मुझे मानव जाति का भविष्य भयानक प्रतीत होता है इसलिये दर्दे दिल का भाव रखता हुआ पुकार करता रहता हूँ कि 'इंसान बनो'। अपने रूप को समझते हुये दूसरों को अपने जैसा समझ कर जीवन व्यतीत करो। मैं अब लिख रहा हूँ। आँखों के सामने मौजूदा विचार भाव जो मानव जाति के हैं जब सामने आते हैं तो दुनियां उजड़ी हुई प्रतीत होती है। सम्भव है मेरा दिमाग ठीक न रहा हो, मगर मेरे बस की बात नहीं है, क्योंकि जगत कल्याण का संस्कार दातादयाल ने दिया था। समझ नहीं आता कि क्या करूँ ! यही समझता हूं कि जब तक इंसान में इंसानियत नहीं आयेगी मानव जाति की खैरियत नहीं।

(६) अलख और लख की व्याख्या (क्रमशः)

भाई कोई सतगुरु संत कहावे, नैनन अलख लखावे ॥

कल के सत्संग में अलख क्या है, उस पर जो मैंने समझा वह कहा था। इस शब्द में अलख लखने के बाद जो अवस्था मनुष्य की होती है उसका उन्होंने वर्णन किया है। वे कहते हैं.—

डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढ़ावै।
प्रान-पूज्य किरियातें न्यारा, सहज समाधि सिखावै ॥

जिसको गुरु ज्ञान हो जाता है अर्थात् जो अलख के दर्शन कर लेता है, अलख को चीत लेता है उसकी क्या अवस्था होती है। मुझे नहीं मालुम इसमें कबीर का अपना भाव क्या है। अलख के लखने के बाद जो मुझको समझ आई वह यह है

कि मैं या मेरा हैपना चेतन्य का एक बुलबुला है जो क्षोभ के आधीन बनता है। जब तक यह अनुभव मुझमें रहता है तो जो कुछ भी मैं बोलता हूं या गति करता हूं, इस बोलने, गति करने या सोचने और विचारने में मैं गिरता नहीं। चिन्ता फिक्र, घबराहट डर पैदा नहीं होते।

द्वार न रूंधे पवन न रोकै, नहिं अनहद अरुझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जब हीं, परमातम दरसावै॥

आँखें बन्द करना, ध्यान धरना, भजन करना, शब्द सुनना किस लिये था ? उस अलख को लखने के लिये। मैंने इसकी व्याख्या कल के सत्संग में विस्तार से करदी है। यह साधन, सुमिरन, ध्यान और भजन उस समय तक अत्यन्त आवश्यक हैं, आवश्यक ही नहीं मनुष्य के लिये मजबूरी है, जब तक मनुष्य की बुद्धि कुछ न कुछ बनी हुई है, क्योंकि जब तक मनुष्य की बुद्धि कुछ न कुछ बनी हुई है वह कहीं न कहीं ठहरने के और उस ठहराव में आनन्द लेने के लिये विवश है मगर जब यह ज्ञान हो जाता है कि तत्व एक है और मेरा अस्तित्व उसमें एक बुलबुला है और जिस तत्व से बनता है उसी तत्व में लय हो जायगा तो फिर इस अनुभव से मानव जीवन को अपने व्यक्तित्व के ढीले हो जाने या जड़ चेतन की ग्रन्थी खुल जाने से यह अहसास (भान) नहीं सताता कि वह अपने आपको विवश करके कहीं ठहर कर विशेष प्रकार का आनंद लें। जैसे मेरे घर में लड़की है उसकी दिमागी हालत ठीक नहीं। चूंकि मुझको यह ज्ञान हो गया है, कि उसकी यह अवस्था प्राकृतिक है तो मैं उसके किसी भी काम को, उसकी किसी भी बात की ओर ध्यान नहीं देता। इसी तरह जिस आदमी को प्रकृति के और इस तत्व के खेल का

ज्ञान हो जाता है उसकी तवज्जह (सुरत) इस प्रकृति के खेल के कामों में दुख और सुख का भान नहीं करती । मैं अपने बारे में सोचता हूँ । जगत कल्याण का भाव था । अपने सम्बन्धियों तथा मिलने वालों के विचारों का जब अनुभव करता था तो जो परिणाम उनके विचारों का प्राकृतिक रूप से होना चाहिये था वह सामने आता था तो चिन्ता दुख या प्रसन्नता प्रतीत हुआ करती थी । अब चूंकि निश्चय हो गया कि ऐसा होना ही था तो इस ज्ञान से चिन्ता ग्रस्त नहीं होता । जब यह अवस्था आ जाती है तो समझलो कि यह अवस्था प्राप्त होगई। यही बात शास्त्रों के अनुसार है—

यत्र यत्र मनो गच्छति तत्र तत्र समाधि नाम ।

संत मत में और सनातन धर्म में कोई अन्तर नहीं । यही कबीर साहब का अभिप्राय है। यही शास्त्र कहते हैं कि अन्तिम परिणाम यही है ।

फिर इन दोनों के कथन में क्या कुछ अन्तर है ! सोचो ! सनातन धर्म वालों को अनुभवी गुरु नहीं मिला । नानक पंथी कबीर पंथी. राधास्वामी मत वाले सबके सब सुमिरन, ध्यान और भजन के चक्र में फंस गये । यह भी बे गुरे रहे ।

इसलिये संतों के मार्ग में किसी मुर्दा पुरुष को नहीं पूजा जाता । केवल जिन्दा पूर्ण पुरुष की संगत का नाम ही असली जीवन ध्येय प्राप्त कराता है । जीवन ध्येय क्या है ?

हर अवस्था में बेफिक्र, बेग़म, बे चिन्त रहना । मन, बुद्धि और आत्मा का समता की अवस्था में रहना, जीवन का ध्येय है ।

करम करै निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै ।
सदा विलास त्रास नहिं मनमें, भोग में जोग जगावै ॥

कर्म करता हुआ निः कर्म (निष्काम) कौन हो सकता है ? वह जिसको यह विश्वास हो जाता है कि यहाँ मेरा कुछ नहीं है। यह विश्वास उस समय आता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है या अनुभव हो जाता है कि मैं चेतन का बुल बुला हूँ अथवा संतों के मार्ग के अनुसार यह कि मैं सुरत हूँ और उस अकाल पुरुष, परमतत्व की हिलोर से बना हूं। जब तक वह कुछ बनी हुई है वह अपने कर्म से अकर्त्ता नहीं हो सकती। इसलिये सतगुरु वह है जो मनुष्य को उसके रूप का ज्ञान करादे।

वह रूप का ज्ञान कैसे करायेगा यह वह जानता है। मुझे किसी और ढंग से यह ज्ञान कराया। हर एक जीव की जो 'मैं' बनी हुई है उसके 'मैं पने' की पहिचान भिन्न भिन्न प्रकार के विचार और विश्वास के कारण है। जब तक मनुष्य के भिन्न भिन्न प्रकार के विचार और विश्वास, जिसमें इसकी 'मैं' फंसी हुई है, दूर न किये जाँयेंगे, यह अवस्था आ नहीं सकती। इसलिये संत मत में गुरु आज्ञा का पालन करना परमआवश्यक है। जीव को अपनी असली अवस्था का स्वयं ज्ञान नहीं होता। पूर्ण पुरुष इसे भली प्रकार जानता है। मेरी 'मैं' धार्मिक विचारों के कारण बनी हुई थी। दाता दयाल ने दया करके मेरी धार्मिक उन्मत्तता को आचार्य पदवी देकर दूर कर दिया। वह कैसे ? मेरी 'मैं' अपने अंतर राम, कृष्ण, दाता दयाल, ईश्वर, परमेश्वर के संस्कारों को लेकर कायम हुई थी। सत्संगियों के अनुभवों ने मुझको इस 'मैं' से निकाल दिया अर्थात धर्म, पंथ व साम्प्रदायक जीवन से अलग कर दिया। यह जितने धर्म पंथ हैं सबके सब इस 'मैं' से निकले हैं। जब यह ज्ञान हो जाता है फिर यह अवस्था आ जाती है—

कर्म करे निः कर्म रहे, जो ऐसी जुगति लखावै।

वह युक्ति दाता दयाल ने बताई। इस युक्ति से वह जो मेरी 'मैं' थी जो राम के रूप के साथ, कृष्ण के रूप के साथ, दाता दयाल के रूप के साथ शब्द व प्रकाश के साथ बंधी हुई थी, अब उनसे नहीं बंधती; क्योंकि मुझे राम, कृष्ण, गुरु और नाम आदि का अनुभव ज्ञान हो गया।

तीन छोड़ चौथा पद दीना। सत्त नाम सतगुरु गति चीन्हा॥

यह ज्ञान या अनुभव निज साधन से और आचार्य पदवी के अनुभवों से हुआ। मनुष्य मन के चक्र में आकर भ्रम में फसा हुआ है। इस मन के चक्र से तो मुझे सत्संगियों के अनुभवों ने निकाला। मैं हमेशा कहता रहता हूँ कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता। इस समय जो मौजूदा सन्त मत के अनुयायी हैं वह सब इस मन के चक्र में हैं। यदि किसी को साफ बात कहता हूं तो कोई सुनने को तैयार नहीं। दूसरी गद्दियों के कितने ही आदमी मेरे पास आते रहते हैं। यह अब किसी अंश तक इस बात को महसूस करने लगे हैं कि जो मैं कहता हूं वह ठीक है। कल श्री हंसराज घई (कानपुर वाले) जो बाबा चरनसिंह जी से दीक्षित हैं, आये। मैं उनका गुरु नहीं किन्तु भाई हूँ। उन्होंने अपना अनुभव प्रगट किया और कहा कि आपका। यह कथन कि आप किसी के अन्दर नहीं जाते सत्य है उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने अपना अनुभव बाबा चरनसिंह से कहा तो बाबा चरनसिंह जी ने भी यही कहा कि वह भी किसी के अन्दर नहीं जाते। यह जितने मन के खेल हैं यह सब माया हैं। हमारे अन्दर जितने संकल्प उठते हैं रूप बनते हैं, देवी देवता तथा गुरु प्रगट होते हैं यह सब माया हैं। इस माया देश में किसी के

विचार में जितनी सच्चाई, पवित्रता और विश्वास है उसीके अनुसार उसके अन्तरीय दृश्य, भाव, विचार सत्य होते हैं।

इसलिये इस देश में रहते हुये यदि मनुष्य की नीयत सच्ची है, भाव सच्चा है तो उसका इस माया देश का जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो जायगा वर्ना नहीं। मैं अपने साधन में इस मन को छोड़ जाता हूं और शब्द और प्रकाश के मण्डल में अथवा शब्द और प्रकाश स्वरूप में खेलता रहता रहता हूँ मगर जब तक शरीर है २४ घंटे वहाँ ठहरे रहना असम्भव है, इसलिये देह और मन में आना पड़ता है। इस अनुभव के आधार पर मैं कबीर साहब के इस शब्द के साथ सहमत हूं कि इष्ट पद यही है कि मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाय कि वह कौन है। मुझे ज्ञान हो गया कि जो मेरी सुरत है यह शब्द की चेतनता का रूप है। शरीर के स्थायी त्याग के बाद क्या होगा इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। इस समय तक इतना ही अनुभव हुआ है कि मैं चेतन का एक बुलबुला हूँ या सुरत हूँ। इस अनुभव से जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत होता है।

जिस समय यह अनुभव हो जाता है और उसका साक्षात्कार (ऐनुलयकीन) हो जाता है तब यह अवस्था मनुष्य में उत्पन्न हो सकती है इससे पहिले नहीं। जब तक किसी को कोई पूर्ण पुरुष नहीं मिलता उसकी यह गुत्थी सुलझ नहीं सकती और सुलझेगी भी उनकी जो परमार्थ के तीव्र जिज्ञासु हैं। परमार्थ के जिज्ञासु वह ही हो सकते हैं जिनको जीवन का अनुभव हो गया है या जिनका मन घुट गया है। इसलिये यह जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं यह एक एक विचारधारा पर चलने वाले हैं। कोई कर्म योग, कोई भक्ति योग, कोई ज्ञान

योग, कोई सांख्य योग और कोई समाधि योग का आमिल (अनुयायी) है। यह लोग अधूरे रह जाते हैं अर्थात् पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाते। मेरा अनुभव यह कहता है कि जब तक किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग से लाभ न उठाया जायगा, सहजावस्था आना असम्भव है। दाता दयाल (महर्षि शिव) ने आचार्य पदवी देकर सत्संगियों के अनुभव से जो लाभ उठाने का मुझे अवसर दिया इसने मेरी आँख खोल दी। मैं भक्ति योग के चक्र में था। निकल नहीं सकता था। दातादयाल कहा करते थे कि भक्ति करने वाला भी पशु है। इसलिये कबीर ने ठीक कहा है--

भाई कोई सत्गुरु संत कहावे, जो नैनन अलख लखावे॥

मैं भाग्यशाली पुरुष हूँ। इस जीवन में उस सहजावस्था, जिसका दूसरा नाम शान्ति है, अर्थात् मन की शान्ति, आत्मा की शान्ति, यह प्राप्त हो गई। ऐसे शान्त पुरुष, जिसको विदेह पुरुष भी कहते हैं; परम संत भी कहते हैं, वीत राग पुरुष भी कहते हैं, की संगत, उसके प्रेम से अधिकारी जीवों को रेडीयेशन के नियम के अनुसार अस्थायी (आरज़ी) शान्ति मिलनी चाहिये। स्थायी (दायमी) अवस्था उसके बचनों के मनन, श्रवण और निदिध्यासन करने से आयेगी।

धरती त्यागी अकाशहुं त्यागे, अधर मढ़ैया छावे।
सुन्न सिखर की सार सिला पर, आसन अचल जमावे॥

सुन्न—एक तो वह सुन्न है जब मनुष्य की सुरत देह से निकलती है तो देह सुन्न हो जाता है, दूसरे जब मन को छोड़ती है तो मन सुन्न होजाता है। तीसरे शब्द और प्रकाश को छोड़कर अथवा उसमें से गुजर कर जब अशब्द और अप्रकाश गति आती है वह सुन्न है। सहजावस्था की सुन्न इन तीनों से अलग है।

वह हमारी वह अवस्था है कि मनुष्य किसी भी अवस्था में रहे—जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति, तुरिया, तुरियातीत, उसमें उसकी सुरत उस अनुभव ज्ञान से कि मैं चेतन का एक बुलबुला हूँ, न पहिले था और न फिर रहूंगा, वह अडोल रहता है। यह अवस्था सार सुन्न कहलाती है। उदाहरण रूप में जसे तुमको विश्वास है कि इस शहर में तुम्हारा अपना कोई आदमी नहीं रहता और न मकान आदि है। यदि उस शहर को कोई हानि पहुंचे, आग लगे, कोई मर जाय तो तुम विचलित नहीं होते। इसी तरह जब मनुष्य को अपने रूप का ज्ञान हो जाता है तब वह अडोल हो जाता है।

भीतर रहा सो बाहर देखे दूजा दृष्टि न आवे।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवा गवन मिटावे॥

यह है गुरु मत जो मेरी समझ में आया है। चूंकि यही भाव रहनी का सनातन धर्म के शास्त्रों में मैंने पढ़ा है और यही भाव कबीर का है, यही जैन, बुद्ध आदि धर्म वालों का है इसलिये मेरी समझ में यह मत मतान्तरों का झगड़ा व्यर्थ है। यह झगड़े इस कारण से हैं कि जो इन धर्म सम्प्रदायों और पंथों के उपदेशक, आचार्य, गुरु, साधु सन्त हैं वह स्वयं साधन सम्पन्न या अनुभवी नहीं हैं।

---

(७) सतगुरु का असली रूप

यह साथ वाले लेख में कबीर के विशेष विशेष शब्दों की व्याख्या निज अनुभव के आधार पर की है।

मेरा ध्येय पूरा हुआ। अब चल चलाव का समय है। कहाँ जाना है ? न कोई आता है न कोई जाता है। इस समय अनेक सतगुरु बने हुये हैं और कई बनने की आस रखते हैं। इस ख्याल से कि जीव बेचारे रोचक और भयानक शिक्षा के प्रभाव से भटका न खाते रहें, आज राधास्वामी दयाल के शब्द के अनुसार सतगुरु का असली रूप बताना चाहता हूँ।

सार बचन गद्य भाग दूसरा, पैरा १५६ में स्वामी जी कहते हैं:—

"हजारों ब्रह्मा, हजारों गोरख, हजारों नाथ और हजारों पैगम्बर त्रिष्ना की अग्नि में जल रहे हैं क्योंकि उनको सतगुरु नहीं मिले। अगर कोई यह सवाल करे कि जब ऐसे बड़े बड़ों को सतगुरु की पहिचान नहीं हुई तो फिर जीव कैसे पहिचान सकता है। उसका जवाब यह है कि सब अपने-अपने अहंकार में रहे। इनको सतगुरु पर निश्चय नहीं आया और इसी सबब से सतगुरु ने आपको इन पर प्रगट नहीं किया क्योंकि यह रचना के काम के अधिकारी थे और इन से यही काम लेना मंजूर था। अगर इनको सतगुरु पर निश्चय आजाता तो फिर इनसे रचना का काम नहीं हो सकता था और दुनियां का बिल्कुल बिगाड़ना भी मंजूर नहीं है। जो जीव कि संसारी हैं उनके वास्ते यह लोग पैदा किये गये हैं कि उनकी संभाल करें। इनके लिये सतगुरु का उपदेश नहीं है वगैरह वगैरह।"

अब मैं स्वयं सोचता हूं कि सतगुरु कौन है ? सतगुरु वह है जो सब प्रकार की वासनाओं और आशाओं से बरी है। जिस महापुरुष ने किसी भी सांसारिक या सामाजिक उद्देश्य

(गरज) के लिये गुरुयायी की, वह सतगुरु नहीं हो सकता। सतगुरु वीतराग अवस्था का नाम है।

इस कर्म से जो दातादयाल ने मुझे दिया, संत सतगुरु की सेवा करने से और स्वामी जी के और कबीर के बचनों को पढ़ने से मैं मजबूर हो रहा हूं कि मैं हर प्रकार की आस जिसमें मानवता मन्दिर की बुनियाद भी शामिल है को त्याग दूँ। मेरा ख्याल था कि अधिक व्याख्या से काम लेता मगर इस ख्याल से कि दुनियाँ पक्षपाती है टेकी है, चुप हो जाता हूँ। मैं ने देवीचरन को, मुंशीलाल को और अपने कुछ मित्रों को काम के लिये कहा। मेरी नीयत भी यही थी कि जिस तरह मुझको इस कर्म से अनुभव हुआ शायद इनको भी हो जाय। बात बहुत ऊँची है। निः इच्छित, बे ख्वाइश होना कठिन काम है। मैं तो केवल इस अनुभव से ऐसा हुआ हूं कि मैं कौन हूं। अनुभव ने सिद्ध किया कि मैं चेतन का बुलबुला हूँ, सुरत रूप हूँ जो मौज से बना हूँ और समय पर समाप्त हो जाऊँगा। असल ज़ात (निज स्वरूप) अकह, अगाध, अनाम और अकाल पद है। चूंकि इस अनुभव से मेरी यह दशा होगई कि जो कुछ हो रहा है हो रहा है, अब शाँत हूं। यही निःइच्छित पने (निष्कामता) की शिक्षा सनातन धर्म की है, यही स्वामी जी की है और यही कबीर की है। यह अमल (क्रियात्मक होने या करनी) का विषय है।



(८) अजर-अमर पद

गुरु मोहि घुटिया अजर पियाई ॥

मैं अपने आप से सवाल करता हूं कि तू गुरुमत में

शामिल हुआ। क्या तूने वह घुटिया पीई? दुनियां को गुरुमत की प्रशंसा करता है। यद्यपि दूसरों की तरह तू नाम दान नहीं देता मगर सत्संग कराता है। यह भी तो गुरुपने का काम ही है। मित्रो! मैंने किसी दिखावे या निजी स्वार्थ या धन आदि के ख्याल से यह काम नहीं किया। जो घुटिया दाता दयाल के शुद्ध संकल्प ने मुझे पिलाई, उससे मुझे क्या मिला? मेरी दुचिताई चली गई और सुचिताई आगई।

जब से गुरु मोहि घुटिया पिलाई. भई सुचित मिटी दुचिताई।

दुचिताई—दो चित, दो ख्याल, दो भाव, दो विश्वास स्पष्ट शब्दों में चित्त की वृति का दो रूप धारण करना दुचिताई है। मेरी दुचिताई चली गई और सुचिताई अर्थात् सच्ची सही समझ आगई, अनुभव हो गया।

दाता दयाल (महर्षि शिव) के शुद्ध स्वरूप का अहसान है जिन्होंने दया करके मुझे यह सच्ची समझ दिलादी। वह असली और सच्चा विवेक और अनुभव कैसे हुआ? ऐसे कि मुझे यह ऐनुलयकीन (पूर्ण निश्चय) हो गया कि मेरे जितने सकल्प विकल्प हैं यह सब माया ही हैं। यही संकल्प घने होकर छाया या स्थूल रूप हो जाते हैं। यह विश्वास सत्संगियों के अनुभवों से हुआ। चूंकि मैं तो उनके अन्दर होता नहीं हूँ, वह अपने चित की वृति से दूसरी धार निकालकर मेरा रूप बनाते हैं और खेलते हैं। अगर वह अपनी ही वृति जो बनाई है पर विश्वास करलें तो वही उनका विश्वास, जो उनकी अपनी ही वृति का दूसरा रूप है छाया अर्थात् स्थूल रूप, वह स्थूल रूप होकर उनकी कामनाओं को पूरा करता है। यदि कमजोर ख्याल है तो अधूरापन रहेगा।

मुझे खब्त था जगत कल्याण का हंसता हूं। ऐ फकीर!

अब पाकिस्तान, चीन, आदि से झगड़ा है। क्या तू कुछ कर सकता है ? सुनो ! संसार का कल्याण या मनुष्य का कल्याण उसके अपने चित्त की वृति पर निर्भर है। प्रत्येक सोसायटी, प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक शासन अधिकारी अपने अपने चित्त से ख्याल उठाकर काम करता है। भाव, विचार इच्छायें अलग अलग हैं। जब तक गुरु की बात को समझकर उसके अनुसार सुचिताई न आयेगी यह कल्याण हर पहलू से होना असम्भव हैं। हर एक अपने चित से अपनी अपनी दुनियाँ अलग अलग बना रहा है, यद्यपि मैंने सही तरीका बता दिया है।

मुझे स्वयं इन विचारों से कोई विशेष प्रभाव नहीं होता और यह इस घुटिया के कारण है।

नाम औषधि अधर कटोरी। पिअत अघाय कुमति गई मोरी ॥

जब तक मनुष्य को यह ऐनुलयकीन (पूर्ण निश्चय या साक्षात्कार) नहीं होता कि माया और छाया क्या है तब तक इस नाम की प्राप्ति नहीं होती। किस नाम को प्राप्ति ? जिससे दुचिताई जाय और सुचिताई आये। चूंकि मुझे यह विश्वास हो गया है कि यह मन माया का साथी है इसलिये अब मेरी सुरत जब अपने मन और संकल्पों को छोड़ती है तो कहाँ जायेगी ? वह मन के कारण रूप में ठहरेगी जिसका नाम सोहंग पुरुष है मगर यदि इस मन के परे का अनुभव ज्ञान नहीं है तो यह कारण मन भंवर में रहेगा क्योंकि नीचे आने से तो इस समझ के आधार पर कि यह मेरी अपनी कल्पना है आयेगा नहीं और अपने आप में महासुन्न में सदा ठहर नहीं सकता, इसलिये वह भंवर में रहेगा और एक विशेष प्रकार का अनुभव ज्ञान लेता रहेगा। मगर फिर गिरता रहेगा।

सत्गुरु ने घुटिया दी अर्थात् नाम दिया। वह नाम है सत नाम जो केवल सुरत से सुना जाता है। अफसोस! न शब्द मिलते हैं और न कोई समझने वाला जिज्ञासु है। जब तक कोई व्यक्ति अपनी सुरत को इस मन से भंवरगुफा के स्थान या वेदान्त से आगे न ले जायगा, वह इस अजर अमरपने को प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि अजर अमर पना केवल सुरत में है न कि मन में। मन का काम संकल्प विकल्प करना है। यदि (सुरत) महा सुन्न गहरी या समाधि में लगाई तो फिर उत्थान होने पर (मन)वासना पैदा करेगा। सोहंगति, भंवर गुफा भी प्राप्त हुई तो भी कारन मन चक्र लगायेगा यद्यपि वह चकर ज्ञानानन्द या आत्मानन्द का ही होगा। इस निज अनुभव के आधार पर सत कबीर की बाणी से सहमत होने को विवश हूं और साथ ही स्वामी जी की बाणी से सहमत हूं।

स्वामी जी ने सोहं पुरुष वालों को अथवा वेदान्तियों को कहा है —

जैसे बाँधी बुलबुल पेटी। गई बाग और गुल पर बैठी।
पल में खींच खिलाड़ी लीना। सुख गया सारा दुख भया दूना।
ऐसे ज्ञान बगीचे माँही। यह ज्ञानी नित ही भरमाई॥

सन्त कबीर का कहना है:—

ब्रह्मा विष्नु पिये नहिं पाये, खोजत संभू जन्म गंवाये।

कोई समय था जब यह बाणी सुनता था पढ़ता था। दिल को चोट लगती थी। अब समझ आगई कि यह वाणी ठीक है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब देहधारी हैं। देह किसी प्रकार का हो, देह के बिना जीवन नहीं रह सकता। वायु की देह है। जल विजली, अग्नि सब देहधारी हैं। जो देह रखते हैं उनकी देह एक दिन नाश होगी। शास्त्र इन ब्रह्मा

आदि देवताओं की आयु बताते हैं। पृथ्वी और ब्रह्माण्ड की भी आयु है जिसको उन्होंने कल्प कल्पान्तरों में वर्णन किया है। इसलिये इन देहधारी देवताओं को मोक्ष नहीं मिल सकती। मोक्ष का अधिकार केवल मनुष्य को है। इनकी मोक्ष प्रलय के समय होती है, जब यह समस्त शक्तियाँ अपने अपने भंडारों में लय हो जाती हैं। इन समस्त देवताओं, जो देह-धारी हैं, के जिम्मे खास खास काम कुदरत की ओर से नियत हैं जिनसे वे बंधे हुये हैं। यही कारण है जसा कि शास्त्र कहते हैं, कि मानव चोला के लिये देवता भी तरसते हैं। मैं भाग्यवान पुरुष हूं जिसको इस जीवन में यह समझ आगई है।

दाता दयाल (महर्षि शिव) को मैं अब ज्ञान दृष्टि से परम पुरुष पूरण धनी का रूप मानता हूँ। मैं ने उनसे प्रेम किया मगर मेरा प्रेम अज्ञान की दृष्टि से था। भ्रम की दृष्टि से था। यदि इस समय उनका चोला होता तो मैं उनको शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से देखता। हाँ, उनका स्टेचू मेरे सामने है। ओह ! मेरे दयाल ! मैं आपका कृतज्ञ हूं। स्वामीजी की बाणी- 'गुरु मैं गुनहगार अति भारी' को सुमिरन करके कहूंगा- देखो महरदया सतगुरु की मेरे थोड़े से भजन को मान लिया री'। जैसे स्वामी जी और कबीर साहब पूर्ण धनी थे वैसे ही दाता दयाल (महर्षि शिव भी थे। खंडन के ख्याल से नहीं किन्तु असलियत के ख्याल से कहता हूँ कि यह ऊची शिक्षा आज कल कोई गुरु नहीं देता। इनका क्या दोष ! संसार को इस शिक्षा की चाहना नहीं। जब तक अधिकार संस्कार नहीं, यहां पहुँचना कठिन है। फिर भी अधिकारी कौन है ? वह जो इस मन से ऊपर जाकर अपनी सुरत को शब्द में लय करते हुये

चल सकता है।

सुरत निरत कर पिये जो कोई, कहें कबीर अमर सो होई।

मैं इस अमर पद का अनुभव कर चुका हूं, मगर फिर चेतन्य होता हूँ। सोचता हूँ ऐ फकीर! तेरा यह अमर पद कहीं भ्रम तो नहीं है। क्यों वहाँ से वापिस आता हूं, कुछ समझ नहीं आती। केवल एक ख्याल करता हूं कि शायद कुदरत को या मौज को मुझ से यह काम लेना मंजूर हो, इसलिये मैं अपने जीवन का अनुभव जहाँ तक हो सकता है अपने टूटे फूटे शब्दों में वर्णन करता रहता हूं। पता नहीं मौज को यह क्या मंजूर है। जानता बूझता हुआ कि इस ऊँची शिक्षा को समझने वाले नहीं हैं, मैं क्यों काम करता हूँ, इस बात का पता नहीं है। चाहता हूँ उस स्थान पर जाकर वापिस न आऊँ मगर आता हूँ। जीवन इसी उधेड़ बुन में बीत गया। क्यों बीत गया कुछ पता नहीं। आगे क्या होगा कुछ पता नहीं। यही चाहता रहता हूँ कि जितनी जल्दी हो इस देह, गेह, मन और आत्मा को भूलूँ और अपने स्वरूप में समा जाऊँ।

---

(९) पिय परिचय का अंग

तीन लोक को सब कोई ध्यावे।
चौथे देव का मरम न पावे॥
चौथा छोड़ पंचम चित लावे।
कहैं कबीर हमरे ढिग आवे॥

बचपन में खोज थी अज्ञात वस्तु की, जो दाता दयाल (महर्षि शिव) के चरणों में ले गई। उन्होंने चौथे पद का

ख्याल (संस्कार) दिया। यही ख्याल तमाम सन्तों ने दिया। गीता में चौथे पद का संकेत है। प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। कबीर के कथनानुसार कि हीरा को पारखी के सामने खोलना चहिये, मुझे भी चुप रहना चाहिये था मगर मेरा प्रण कि अपना अनुभव कह जाऊँगा विवश कर रहा है कि मैं कह जाऊँ कि चौथा और पाँचवाँ (पद) क्या है। तीनों लोक, शारीरिक भान, मानसिक भान-बोध और आत्मिक बोध हैं। जिस मनुष्य की सुरत शरीर के सुख दुख की परवाह नहीं करती, जिस आदमी की सुरत जितने भाव विचार उसके अन्तर से उठते रहते हैं, उनको सत्य मान कर उनमें फंसती नहीं, जिस आदमी की सुरत अपने अन्तर मस्ती और आनन्द की चाह नहीं रखती और जो सुरत इन तीनों से अलग रह कर अपने रूप में ठहर सकती है, उस अवस्था का नाम चौथा पद है। इस शरीर में आने से पहिले यह शरीर ही नहीं किन्तु किसी भी शरीर में चाहे वह स्थूल है, सूक्ष्म है कारण है, इस लोक में है या ऊपर के लोकों में है यानी इनमें आने से पहिले जो हमारी अवस्था थी वह है चौथा पद, मगर कोई यह चाहे कि मैं इस चौथे पद का अनुभव अपनी बुद्धि से करूँ तो असम्भव है क्योंकि बुद्धि स्वयं एक शरीर है। तो जब तक कोई आदमी अपनी सुरत को रूप रंग, विचार से निकालेगा नहीं और आनन्दमय कोश को छोड़ेगा नहीं, वह चौथे पद का अनुभव किसी सूरत में कर नहीं सकता। इस लिये—

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि बिचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार॥

वह करनी सुमिरन ध्यान भजन है बशर्ते कि इसके साथ

कोई पर्णपुरुष भी मिला हुआ हो, वरन अकेला सुमिरन ध्यान और भजन फायदा नही देसकता। मैंने बहुत सुमिरन ध्यान और भजन किया मगर जब तक मुझे सत गुरु नहीं मिला मैं इस चौथे पद में जा नहीं सका। तुम सवाल करोगे कि तुमको पूर्ण पुरुष मिला हुआ था फिर आप कैसे कहते हो कि आपको सतगुरु नहीं मिला। देखो! पूर्ण पुरुष के मिलने से सतगुरु की प्राप्ति का मार्ग मिलता है। सतगुरु कहते हैं सच्चे ज्ञान को, सच्चे राज को, किसको सच्चा ज्ञान शीघ्र होजाता है किसी को अधिकार संस्कार के अनुसार देर लग जाती है मगर पूर्ण पुरुष के मिलने पर ही सतगुरु या सतज्ञान की प्राप्ति होती है। दातादयाल संकेतों में सच्चा ज्ञान देते थे, सच्ची बात कहते थे मगर मेरी समझ मेंनहीं आता था। उन्होंने युक्ति से काम लिया। मुझे आचार्य पदवी देदी इस आचार्य पद पर आने से जो अनुभव हुये उनसे मुझे सतगुरु की प्राप्ति होगई, ज्ञान होगया कि शरीर छाया है, मन के संकल्प माया है और आनन्द की अवस्था मेरे अन्तर में जो आत्मा है उसका खेल है। जब तक इंसान को प्रबल इच्छा इस ज्ञान की प्राप्ति की न हो और उसमें वैराग न हो वह इस मार्ग का अधिकारी नहीं है इस ज्ञान के होने के बाद कि मेरा निज स्वरूप इस त्रिलोकी का आधार है इंसान की सुरत यदि चाहे तो अपने आपको इस चौथे पद में ठहरा सकती है। बुद्धि से समझना एक और बात है। समझ करके चौथे पद में ठहरना और बात है।

मैंने इस चौथे पद का भेद या मर्म दे दिया। दाता दयाल ने तथा अन्य सन्तों ने केवल इशारा किया। मैंने खोल दिया। समझाने में कोई कमी नहीं रक्खी। अमल करके ठहरना यह दूसरों का अपना काम है। वह गोप नियम या गुप्त बात थी।

इसे प्रगट कर दिया। जब मनुष्य की यह अवस्था साधन करते हुये परिपक्व हो जाती है तो उसके बाद पाँचवी अवस्था आती है जिसमें मैं इस समय चल रहा हूँ। उस अवस्था में क्या होता है ?

जीवन और अस्तित्व दोनों की समाप्ति हो जाती है। सत कबीर ने उसे अपने शब्द में इस तरह लिखा है—

सखिया वा घर सब से न्यारा, जहां पूरण पुरुष हमारा।
जहं नहिं सुख दुख सांच झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा॥
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा।
नहिं तहं ज्ञान ध्यान नहिं जप तप, वेत कतेब न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब उहाँ हिरानी॥
धर नहिं अधर न बाहर भीतर, पिंड ब्रह्माण्ड कछु नाहीं।
पाँच तत्व गुन तीन नहीं तहं, साखी शब्द न ताहीं॥
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा बिना बृक्ष फल सोहै।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वासा लेख न कोहै॥
नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई, नहिं सूक्ष्म अस्थूलं।
नहिं अच्छर नहिं अवगति भाई, ये सब जग की भूलं॥

अन्तिम कड़ी--

जहाँ पुरुष तहवाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरवाना॥

संतों ने इस रहस्य को प्रगट करने में जो वर्णन शैली प्रयोग की है, मैंने उसे अपने ढंग पर वर्णन किया है कि जीवन या हमारा अस्तित्व चेतन्य का एक बुल बुला है। उस तत्व से बनता है उसी में समा जाता है। इसके दृढ़ अनुभव की अवस्था का नाम मैं पाचवाँ पद समझता हूं। इस पाँचवें पद के निश्चय से कुछ करना धरना, रहना सहना

बाकी नहीं रहता। यह मेरे जीवन का अनुभव है। मैं इन-सतों के बचनों से सहमत हूँ इसलिये मैं इन सन्तजनों का आदर मान करता हूं।

तीन गुगन की भक्ति में, भूल रहा संसार।
कहैं कबीर सत नाम बिन, कैसे उतरै पार॥

मैं ने जीवन देह, मन और आत्मा के खेलों में बिताया है। आचार्य पद के अनुभवों ने मुझको चौथेपद में ठहरने के लिये विवश किया मगर मेरे अनुभव का कोई समर्थन नहीं करता था। इसलिये मैं ढिल मिल यकीन रहा करता था। मौज ने भाई नन्दू सिंह, हुजूर बाबा चरनसिंह व हुजूर संत कृपालसिंह की जुबान से मेरे अनुभव को एनलयकीन (पूर्ण विश्वास) में बदल दिया। इन तीनों महापुरुषों ने और कई अन्य महात्माओं ने चूंकि मुझे कह दिया कि जब किसी की सहायता उनका रूप करता है तो उनको भी उस सहायता करने की जानकारी नहीं होती। इसलिये मैं इन महापुरुषों को सतगुरु का रूप समझ कर नमस्कार करता हूँ। इनकी बदौलत मैं असलियत को समझ कर जीवन के ध्येय को पूरा कर गया। यह मौज थी कि इन रूपों अर्थात् सन्त कृपाल सिंह, बाबा हर चरनसिंह व नन्दूसिंह जी ने मुझे इस कर्त्ता पुरुष जिसने दुनियाँ को रचा है, उससे निकलने का अवसर दिया और मुझे विश्वास हो गया कि जो कुछ कबीर ने कहा है ठीक है।

"तीन गुनुन की भक्ति में, भूल रहा संसार।
कहैं कबीर सत नाम बिन, कैसे उतरे पार॥

एक मैं ही इसमें फंसा हुआ नहीं था। इस समय सब के

सब राधा स्वामी मत वाले, जो किसी डेरे धाम या किसी पुरुष से बंधे हुये हैं, तीन गुणों की भक्ति में हैं। साथ ही जितने प्राणी ईश्वर, परमेश्वर की पूजा में हैं यह सब के सब चौथे पद से बंचित हैं, पांचवाँ पद तो दूर रहा।

ओंकार कर्ता नहीं, यह कर्ता मत जान।
साँचा शब्द कबीर का, परदे में पहिचान।

ओंकार क्या है ? जिस तरह हमारे अन्दर हमारा मन फुरना करके अपनी माया या संकल्प पैदा करता है इसी तरह इस दुनियाँ (ब्रह्माण्ड) का जो मन है अपने संकल्प से इस संसार को रचता है। तो जब तक कोई आदमी अपनी सुरत से इस कर्त्ता पुरुष, जो अपने संकल्प से रचना करता है, का पुजारी है, इस त्रिगुणात्मक जगत की रचना से बाहर नहीं आ सकता है। आज तक इस राज को पर्दे में रक्खा गया। अब समय बदला। सत्गुरु ने चोला बदला और चोले में परमदयाल का खेल खेला जा रहा है। गुरु का चोला वाणी है, वर्णन शैली है। प्राचीन समय की वर्णन शैली पर्दे में थी, केवल संकेत था।

अब इस समय की वर्णन शैली में पर्दा नहीं रक्खा गया। जो अधिकारी हैं उनके लिये रास्ता साफ कर दिया गया। जो अधिकारी नहीं हैं वह न पहिले फायदा उठा गये और न अब उठा सकते हैं। मैंने मौज आधीन इस पर्दे को जगत कल्याण के ख्याल से उठाने की कोशिश की है कि मानव जाति अपने ही मन के बनाये हुये इष्ट या आदर्श को सामने रख कर उसकी पूजा करती है और इसी के कारण मानव जाति आपस में बट चुकी है। इस स्पष्ट वर्णन से यदि बुद्धिमान सोचें तो उनका धार्मिक पक्षपात दूर हो सकता है क्योंकि राम

कृष्ण, मुहम्मद, तीर्थाङ्कर जिनके पीछे दुनियाँ लगकर बटी हुई है। वह वास्तव में हर एक मनुष्य का अपना माना हुआ कल्पित उपास्यदेव हैं। असली और सच्चा उपास्यदेव केवल अनहद वाणी है। वही सच्चा गुरु है और इस भवसागर से निकालने वाला है। दुनियां शरीर को गुरु मानती है अथवा सतगुरु मानती है जो जन्मता है और मरता है मगर सतगुरु मरता जन्मता नहीं। सत कबीर ने अपने शब्द में सतगुरु की जो पहिचान वर्णन की है उसे सुनो -

सतगुरु चीन्हों रे भाई।
सत्तनाम बिन सब नर बूढ़े, नरक पड़ी चतुराई ॥१॥
वेद पुरान भागवत गीता, इनको, सबै दृढ़ावै।
जा को जनम सुफल रे प्रानी सो पूरा गुरु पावै ॥२॥
बहुत गुरु संसार कहावें, मंत्र देत हैं काना।
उपजें विनसें या भवसागर, मरम न काहू जाना ॥३॥
सतगुरु एक जगत में गुरु हैं, सो भवसे कढ़िहारा।
कहैं कबीर जगत के गुरुआ, मरि मरि लें औतारा ॥४॥

इस शब्द में सत कबीर ने स्पष्ट कहा है -

बहुत गुरु संसार कहावें, मत्र देत हैं काना।
उपजे बिनसे या भवसागर, मरम न काहू जाना ॥
सतगुरु एक जगत में गुरु हैं, सो भव से कढ़िहारा।
कहैं कबीर जगत के गुरुआ, मर मर लें अवतारा ॥

मेरे इस स्पष्ट वर्णन का उद्देश्य यह है कि जितने इस समय सुरत शब्द योग के अभ्यासी हैं और सन्त मत की गद्दियां हैं यह सब एक प्लेटफार्म पर आयें औरअपना इष्ट अन्तरी अनहद मार्ग रखते हुये परस्पर प्रेम और एकता रखते हुये इस जीवन यात्रा को सुख पूर्वक पूरी करते हुये अपने घर

जाये। यह जो इस समय सन्त मत में भेद भाव. या भिन्नता हैं इनको दूर करने के लिये मौज ने मेरे दिमाग को हिलाया है। जीव निबल अबल और अज्ञानी हैं। अब इस स्पष्ट वर्णन से कम से कम इतना लाभ तो होगा कि मौजूदा गुरु लोग इस गुरु इज़म की आड़ में इन भोले भाले जीवों को अपना बारबरदारी का जानवर नहीं बनायेंगे।

हरा हुआ सूखा बहुर, सो त्रिगुन विस्तार।
प्रथमहिं ताको सुमिरिये, जाका सकल पसार॥

हम उस वस्तु को पूजते हैं जो पहिले जहूर में आती है या प्रगट होती है और फिर नाश हो जाती है। यह जितने लोक लोकान्तर हैं -सूर्य मंडल. चन्द्र मंडल, विष्णु लोक. शिव लोक आदि और यह जितनी भी उत्पत्ति है, यह बनती हैं और बिगड़ती हैं। हिन्दू शास्त्र भी मानते हैं कि हर एक देवता की आयु है। पृथ्वी, ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि सबकी आयु है इसलिये यदि मनुष्य अपना इष्ट शुरू में ही उस परमतत्व आधार आदि शब्द को माने तो हमारे धार्मिक पक्षपात दूर हो जायेंगे। दूसरे हमारी धार्मिक जीवन यात्रा शीघ्र समाप्त हो जायेगी।

अलख अलख क्या कहत हो. अलखहिं लखे न कोय।
अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलख नहिं होय॥

धार्मिक जगत के लोग उस मालिक का कोई न कोई रूप मानकर पूजते रहते हैं। मेरी उम्र बीत गई। मैं भी कभी ऐसा ही किया करता था। अब पता लगा कि उसको तो न कोई देख सकता है न छू सकता है। वह केवल अनुभव गम्य है। जो जीव वहां गया वह अपना अस्तित्व मिटा गया। मिलना क्या था, वह स्वयं ही न रहा। सन्त कबीर ने एक जगह लिखा है—

तन मन जोबन जार कर, भसम किया सब देह।
बिरहिन जलबर मर गई, क्या तू ढूढ़े खेह ॥
लकड़ी जल कोयला भई, कोयला जल हुआ राख।
मैं बिरहन ऐसी जली, कोयला भई न राख ॥

पंचम पद

यही बात मैंने कही है कि पाँचवां पद वह है जहाँ मनुष्य देह, मन, आत्मा और सुरत चारों के भान-बोध को समाप्त करके उस अवस्था में चला जाता है जिसको अकाल पुरुष, अनामी पुरुष, परम तत्व, राधास्वामी पद नाम रक्खा हुआ है।

यह अन्तिम अवस्था पाँचवां पद कहलाती है।

लखन हार ने लख लिया, जाको है गुरु ज्ञान ।
शब्द सुरत के अन्तरे, अलख पुरुष निर्वान ॥

इस गति को प्राप्त करने का एक ही तरीका है सुरत शब्द योग का साधन और किसी वीत राग निर्बन्ध पुरुष का सतूसग और बस !

जग में चारों राम हैं, तीन राम व्यौहार।
चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार ॥

छोटी उम्र में राम को मिलने निकला था। जीवन सफर करता हुआ आया। मेरी कुरेद या राम के मिलने की तड़प ने मुझे दाता दयाल (महर्षि शिव) के चरणों में फेंका। उनकी दया से अब असली राम का पता लगगया। चूंकि मैंने प्रण किया था कि अनुभव कह जाऊँगा वह कह दिया। बस !



(१०) मुक्ति की आशा जीवन में ही करो

साधो भाई जीवत ही करो आसा ॥
जीवत समझे जीवत बूझै, जीवत मुक्ति निवासा ।
जियत करम कीं फांसि न काटी, मुए मुक्ति की आसा ॥१॥
तन छूटे जिव मिलन कहत हैं, सो सब झूठी आसा ।
अबहुं मिला तो तबहुं मिलेगा, नहिं तो जमपुर बासा ॥२॥
दूर दूर ढूढ़े मन लोभी, मिटै न गर्भ तरासा ।
साध संत की करै न बंदगी, कटै करम की फाँसा ॥३॥
सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्त नाम विस्वासा ।
कहै कबीर साधन हितकारी, हम दासन के दासा ॥४॥

सत कबीर का यह शब्द और मेरा अपना जीवन मेरे सामने है। मेरे अनुभव ने मुझे यह सिद्ध किया कि जीवन चेतन का एक बुलबुला है। यह क्यों कहा? इसलिये कि मैं साधन अभ्यास करता आरहा हूँ। सत्संगियों के अनुभवों ने विवश किया कि मैं उस जगह की खोज करूँ जहाँ रूप रंग दृश्य नहीं रहते क्योंकि उनके अनुभवों ने सिद्ध कर दिया कि मैं किसी के अंदर नहीं जाता और यह सब भाव विचार, विश्वास और आशायें उनके अपने मन की होती हैं। अभी सफर जारी है। यह भाव विचार, रूप, रंग चेतनतायें मुझमें मौजूद हैं। इस अनुभव से कि यह जीवन मालिक की मौज से बना है और यह जीवन के खेल हैं, इनका अपना अस्तित्व नहीं हैं, फिर यह सब भाव विचार आदि मुझको फंसाते नहीं। देखता सब कुछ अवश्य हूँ मगर यह अनुभव विवश करता है कि इनमें फसूं नहीं। फिर मैं क्या हुआ! मैं वह हूँ जिसमें यह सब कुछ नहीं हैं। यह सब चेतनतायें कुछ नहीं।

कभी जब वह अवस्था आती है तो कुछ नहीं रहता। फिर मुक्ति क्या हुई ? यही अनुभव ज्ञान। इसके सिवाय और मेरी समझ में कुछ नहीं आया। जब तक यह अवस्था प्राप्त नहीं होती तब तक यह जितने जीवन की चेतनताओं के खेल हैं ये सत प्रतीत होते हुये वास्तविक अनामी या अकाल या ज्ञात को अपने साथ लगाये रखते हैं। यही कबीर का कहना है –

साधो भाई जीवत ही करो आसा ॥ टेक ॥
जीवत समझै जीवत बूझै, जीवत मुक्ति निवासा।
जियत कर्म की फांसी न काटी, मुए मुक्ति की आसा।

मुक्ति और बंधन क्या हैं ? हमारे जितने अहसासात (भान बोध) हैं इनको सत्य मान कर इनमें खेलना और खेल के दुख सुख उठाना बन्धन है। और इनको असत्य समझ कर या इस खेल में रहते हुये उस खेल के प्रभावों में न फंसना मुक्ति है। यह ज्ञान जब किसी को मिलेगा इस खेल में खेलते हुये मिलेगा अर्थात् जब तक जीवित हो या जीवन है इसी में ही ज्ञान हो सकता है। मरने के बाद क्या होगा ? वही अवस्था होगी जो अब है अर्थात् हम इस गति, जिसके कारण यह सब रूप रंग दृश्य दिखाई पड़ते हैं, में फंसे रहेंगे और इस में फंसना ही कर्म की फाँस है।

तन छूटे जिव मिलन कहतु है, सो सब झूठी आसा।
अब हूँ मिला सो तबहुँ मिलेगा, नहिं तो जमपुर बासा ॥२॥

तो जब तक इसी जीवन में यह अनुभव दृढ़ न हो जाय, यह आशा कि इस कर्म के जाल से हम बच सकेंगे असम्भव है।

दूर दूर ढूंढ़ै मन लोभी, मिटै न गर्भ तरासा।
साध संत की करै न बंदगी, कटै करम की फाँसा। ३ ॥

इस अवस्था को प्राप्त करने का क्या तरीका है ? साधन और संत की संगत। मुझे यह ज्ञान दाता दयाल की संगत और साधुओं की संगत से हुआ। जब तक कोई बाहरी शक्ति यह राज (रहस्य) न बतायेगी, यह अनुभव मनुष्य को हो ही नहीं सकता। पिछले समय में अधिकार और संस्कार को देखते हुये इस रहस्य को सैन बैन में कहा गया। मेरे पास हजारों आदमी आते हैं। क्या वह मोक्ष के लिये आते हैं ? नहीं, फिर इनको इस रहस्य को बताना ऊसर जमीन में बीज बोना है। मैंने मौज आधीन चूंकि प्रण किया था कि जो मुझको मिलेगा वह बता जाऊँगा, इसलिये इस राज को खोल दिया यद्यपि अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर समझता हूँ कि इस रहस्य के समझने की दुनिया अधिकारी नहीं है।

सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्त नाम विश्वासा।
कहैं कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा॥

कबीर साहब कहते हैं कि मैं साधुओं के हित के लिये हूं क्योंकि मैं इनका दास हूँ। जिस तरह कबीर ने ऐसी बात कही है इसी तरह मैं भी कहता आ रहा हूं कि यह अनुभव, यह ज्ञान मुझको साधुओं की बदौलत हुआ। सत्संगियों के द्वारा मिला। मैंने इन सत्संगियों के हित के लिये जो साधन अवस्था में रहते हैं अर्थात जो मनकी एकाग्रता में रहते हैं उनके हित के लिये इस राज़ को खोल दिया। यही कि असलियत को ग्रहण करो और सतगुरु, ज्ञान स्वरूप, अनुभव स्वरूप को समझो। वह सतनाम क्या है ? अपने अन्तर के जितने दृश्य, रूप रंग और रेखाओं को छोड़ने के पश्चात् जो धुन प्रगट होती है उसका नाम सतनाम है। उस नाम के जपने या सुनने

से क्या होता है? उससे यह अनुभव होता है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

सुरत शब्द दाऊ अनुभव रूपा। तू तो पड़ा भरम के कूपा॥

तो यह अनुभव ही वास्तव में सब से ऊँचा नाम है। ऐसा ही कबीर साहब का कथन है और मैं भी अपने अनुभव के आधार पर इसी परिणाम पर पहुंचा हूं। बस!

मालिक सब का कल्याण करे।

❀ कबीर सार शब्द व्याख्या समाप्त ❀

कबीर के शब्द

(१)

पिया मिलन की आस, रहौं कब लौं खड़ी।
ऊँचे चढ़ि नहिं जाय, मनें लज्जा भरी॥
पाँव नहीं ठहराय, चढ़ूं गिरि गिरि पड़ूं।
फिर फिरि चढ़हुँ सम्हारि, चरन आगे धरूं॥
अंग अंग ठहराय, तो बहु विधि डरि रहूं।
कर्म कपट मग घेरि, तो भ्रम में भुलि रहूं॥
निपट बारि अनारि, तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हारि, मिलन कस होइ है॥
तजो कुमति बिकार, सुमति गहि लीजिये।
सतगुरु शब्द सम्हारि, चरन चित दीजिये॥
अन्तर पट दे खोल, शब्द उर लावरी।
दिल बिच दास कबीर, मिलै तोहि बावरी॥

कबीर फकीरी अजब है, जो गुरु मिलै फकीर।
संशय सोक निवारि के, निरमल करै सरीर॥

(२)

वारी जाऊँ मैं सत्गुरु के, मेरा किया भरम सब दूर।
चंद चढ़ा कुल आलम देखै, मैं देखूं भ्रम दूर॥१॥
हुआ प्रकास आस गई दूजी, उगिया निरमल नूर॥२॥
माया मोह तिमिर सब नासा, पाया हाल हुजूर॥३॥
विषय विकार लार है जेता, जारि किया सब धूर॥४॥
पिया पियाला सुधि बुधि बिसरी, होगया चकना चूर॥५॥
हुआ अमर मरे नहिं कबहूँ, पाया जीवन मूर॥६॥
बंधन कटा छूटिया जम से, किया दरस मंजूर॥७॥
ममता गई भई उर समता, दुख सुख डारा दूर॥८॥
समझे बनै कहे नहिं आवै, भयो आनंद भरपूर॥९॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बजिया निरमल तूर॥१०॥

(३)

कहौं उस देश की बतियाँ, जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ॥१॥
नहिं रवि चन्द्र औतारा, नहीं उजियार अँधियारा॥२॥
नहिं वहां पवन औ पानी, गये वहि देस जिन जानी॥३॥
नहिं तहँ धरनि आकासा, करै कोई संत तहँ बासा॥४॥
उहाँ गम काल की नाहीं, तहाँ नहिं धूप औ छाहीं॥५॥
न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जर जावै॥६॥
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै॥७॥
सोहंगम नाद नहिं भाई, न बाजै संख सहनाई॥८॥
निहच्छर जाप तहँ जावै, उठत धुन सुन्न से आवै॥९॥
मँदिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अँधियारी॥१०॥
कबीरा देश है न्यारा, लखै कोई नाम का प्यारा॥११॥

(४)

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जो आवै ॥
बिन मुखड़ा से जप करो, नहिं जीभ डुलाओ ।
उलटि सुरति ऊपर करो, नैनन दरसाओ ॥१॥
जाहु हंस पच्छिम दिसा, खिरकी खुलवावो ।
तिरबैनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥२॥
पानी पवन कि गम नहीं, वोहि लोक मंझारो ।
वाही बिच इक रूप है, वोहि ध्यान लगावो ॥३॥
जिमीं असमान वहां नहीं, वा अजर कहावै ।
कहै कबीर सोइ साधु जन, वा लोक मंझावै ।४॥

(५)

जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो ।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो ।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुये मुक्ति कहाँ होई हो ।
तीरथ बासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो ॥१॥
जीवत भर्म की फाँस न काटी, मुये मुक्ति की आशा हो ।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हारे ॥२॥
है अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो ।
बिना अतीत सदा बंधन में, कितहूँ जानि न पाई हो ॥३।
आवागवन से गये छूटि के, सुमिर नाम अविनासी हो ।
कहै कबीर सोई जन गुरु हैं, काटी भ्रम की फाँसी हो ॥४॥